नारायण उवाच

अथ विष्णुः सभामध्ये तं संपूज्य गणेश्वरम् । तुष्टाव परया भक्त्या सर्वविघ्नविनाशकम् ॥४२॥

विष्णुरुवाच

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । नैव वर्णयितुं शक्तोऽस्म्यनुरूपमनीहकम् ॥४३॥
प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम् । सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम् ॥४४॥
अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरूपिणम् । वायुतुल्यं च निर्लिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षिणम् ॥४५॥
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे । कर्णधारस्वरूपं च भक्तानुग्रहकारकम् ॥४६॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम् । सिद्धं सिद्धिस्वरूपं च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम् ॥४७॥
ध्यानातिरिक्तं ध्येयं च ध्यानासाध्यं च धार्मिकम् । धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्माधर्मफलप्रदम् ॥४८॥
बीजं संसारवृक्षाणामङ्कुरं च तदाश्रयम् । स्त्रीपुंनपुंसकानां च रूपमेतदतीन्द्रियम् ॥४९॥
सर्वाद्यमग्रपूज्यं च सर्वपूज्यं गुणार्णवम् । स्वेच्छया सगुणं ब्रह्म निर्गुणं स्वेच्छया पुनः ॥५०॥
स्वयं प्रकृतिरूपं च प्राकृतं प्रकृतेः परम् । त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनैरपि ॥५१॥
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः । सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ ॥५२॥
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥५३॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा मुनीशसुरसंसदि । सुरेशश्च सुरैः सार्धं विरराम रमापतिः ॥५४॥

नारायण बोले—अनन्तर विष्णु ने सभामध्य समस्त विघ्नों के नाशक गणेश्वर की अर्चना करके परा-भक्ति से उनकी स्तुति करना आरम्भ किया ॥४२॥

विष्णु बोले—हे ईश! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, तुम ब्रह्मज्योति और सनातन हो, अतः मैं तुम्हारा वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि तुम इच्छारहित हो ॥४३॥ समस्त देवों में श्रेष्ठ, सिद्धों और योगियों के गुरु, समस्त के स्वरूप, सब के अधीश्वर, ज्ञानराशि के स्वरूप, अव्यक्त, अविनाशी, नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप, वायु के समान निर्लिप्त, सब के साक्षी एवं संसार-सागर को पार करने के लिए मायारूपी जहाज में तुम अति दुर्लभ कर्णधार स्वरूप होकर भक्तों पर कृपा करने वाले हो ॥४४-४६॥ उत्तम, वरेण्य, वरप्रद, वरदों के भी अधीश्वर, सिद्ध, सिद्धिस्वरूप, सिद्धिप्रद, सिद्धि के साधन, ध्यान से परे, ध्येय, ध्यान से असाध्य, धार्मिक, धर्मस्वरूप, धर्मज्ञाता, धर्म-अधर्म के फलदायक, संसार रूपी वृक्ष के बीज और उसके आश्रय अंकुर, स्त्री, पुरुष एवं नपुंसकों के रूप, अतीन्द्रिय (इन्द्रियों से दिखायी न देने वाले), सभी के आद्य, सब से पहले पूज्य, सब के पूज्य, गुणसागर, स्वेच्छया सगुण ब्रह्म, पुनः स्वेच्छया निर्गुण ब्रह्म, स्वयं प्रकृति रूप, प्राकृत तथा प्रकृति से परे हो। इसीलिए अनन्त भी अपने सहस्र मुखों द्वारा तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं ॥४७-५१॥ उसी प्रकार पाँच मुख वाले (शिव), चार मुख वाले ब्रह्मा, सरस्वती और मैं तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ। चारों वेद भी समर्थ नहीं हैं तो वेदवादियों की बात ही क्या ॥५२-५३॥ इस प्रकार देवों के अधीश्वर रमापति विष्णु मुनीन्द्रों और देवों की सभा में देवों के साथ उनकी स्तुति कर के चुप हो गये ॥५४॥ हे मुने!

इदं विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यः पठेत् । सायं प्रातश्च मध्याह्ने भक्तियुक्तः समाहितः ॥५५॥
तद्विघ्ननाशं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने । वर्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकः सदा ॥५६॥
यात्राकाले पठित्वा यो याति तद्भक्तिपूर्वकम् । तस्य सर्वाभीष्टसिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥५७॥
तेन दृष्टं च दुःस्वप्नं सुस्वप्नमपजायते । कदाऽपि न भवेत्तस्य ग्रहपीडा च दारुणा ॥५८॥
भवेद्विनाशः शत्रूणां बन्धूनां च विवर्धनम् । शश्वद्विघ्नविनाशश्च शश्वत्सम्पद्विवर्धनम् ॥५९॥
स्थिरा भवेद्गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्धनम् । सर्वैश्वर्यमिह प्राप्य ह्यन्ते विष्णुपदं लभेत् ॥६०॥
फलं चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद्भुवेद्ध्रुवम् । महतां सर्वदानानां तद्गणेशप्रसादतः ॥६१॥

नारद उवाच

श्रुतं स्तोत्रं गणेशस्य पूजनं च मनोहरम् । कवचं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं भवतारणम् ॥६२॥

नारायण उवाच

पूजायां सुनिवृत्तायां सभामध्ये शनैश्चरः । उवाच विष्णुं सर्वेषां तारकं जगतां गुरुम् ॥६३॥

शनैश्चर उवाच

सर्वदुःखविनाशाय पापप्रशमनाय च । कवचं विघ्ननिघ्नस्य वद वेदविदां वर ॥६४॥
बभूव नो विवादश्च शक्त्या वै मायया सह । तद्विघ्नप्रशमार्थं च कवचं धारयाम्यहम् ॥६५॥

भगवान् विष्णु कृत गणेश के इस स्तोत्र का जो प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल भक्तिपूर्वक एवं संयत होकर पाठ करता है, उसके विघ्नों का नाश स्वयं विघ्नेश निरन्तर करते हैं। उसके समस्त कल्याणों की वृद्धि होती है तथा वहस दैव कल्याण उत्पन्न करता है ॥५५-५७॥ यात्राकाल में जो इसका भक्तिपूर्वक पाठ करके जाता है उसके सम्पूर्ण अभीष्ट (मनोरथ) सिद्ध होते हैं, इसमें संशय नहीं ॥५७॥ उसका देखा अशुभ स्वप्न शुभ स्वप्न हो जाता है और दारुण ग्रहपीड़ा उसे कभी नहीं होती है ॥५८॥ शत्रु-नाश, बान्धव-वृद्धि निरन्तर विघ्न-विनाश और निरन्तर सम्पत्ति की वृद्धि होती है ॥५९॥ गृह में लक्ष्मी का अविचल निवास होता है, पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है और वह इस लोक में समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति करके अन्त में विष्णुलोक प्राप्त करता है ॥६०॥ तीर्थों, यज्ञों और बड़े-बड़े समस्त दानों के जो फल होते हैं, वे सभी फल गणेश की कृपा से उसे सुनिश्चित प्राप्त होते हैं ॥६१॥

नारद बोले—गणेश जी का स्तोत्र और मनोहर पूजन हमने सुन लिया है, अब इस समय उनका संसार से तारने वाला कवच सुनना चाहता हूँ ॥६२॥

नारायण बोले—पूजन सुसम्पन्न होने के उपरांत सभामध्य में शनि ने सभी को तारने वाले और जगत् के गुरु विष्णु से कहा ॥६३॥

शनैश्चर बोले—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! विघ्न-विनाशन (गणेश) का कवच बताने की कृपा करें, जो समस्त दुःखों का नाशक और पाप को निर्मूल करने वाला है ॥६४॥ शक्ति माया के साथ हमारा बहुत बड़ा विवाद हो चुका है, इसलिए उस विघ्न के विनाशार्थ मैं कवच धारण करना चाहता हूँ ॥६५॥

विष्णु उवाच

विनायकस्य कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। सुगोप्यं च पुराणेषु दुर्लभं चाऽऽगमेषु च॥६६॥
उक्तं कौथुमशाखायां सामवेदे मनोहरम्। कवचं विघ्ननाथस्य सर्वविघ्नहरं परम्॥६७॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च सूर्यज। एवंभूतं च कवचं न देयं प्राणसंकटे॥६८॥
आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छया यस्य मायया। नित्योऽयमेकदन्तश्च कवचं चास्य वत्सक॥६९॥
पूजाऽस्य नित्या स्तोत्रं च कल्पे कल्पेऽस्ति संततम्। अस्य[1] वै जन्मनः पूर्वं मुनयश्च सिषेविरे॥७०॥
यथा मदवतारेषु जन्म विग्रहधारणम्। तथा गणेश्वरस्यापि जन्म शैलसतोदरे॥७१॥
यद्धृत्वा मुनयः सर्वे जीवन्मुक्ताश्च भारते। निःशङ्काश्च सुराः सर्वे शत्रुपक्षविमर्दकाः॥७२॥
कवचं बिभ्रतां मृत्युर्न भिया याति संनिधिम्। नाऽऽयुर्व्ययो नाशुभं च ब्रह्माण्डे न पराजयः॥७३॥
दशलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्। यो भवेत्सिद्धकवचो मृत्युं जेतुं स च क्षमः॥७४॥
सुसिद्धकवचो वाग्मी चिरंजीवी महीतले। सर्वत्र विजयी पूज्यो भवेद्ग्रहणमात्रतः॥७५॥
मालामन्त्रमिमं पुण्यं कवचं मङ्गलं शुभम्। बिभ्रतां सर्वपापानि प्रणश्यन्ति सुनिश्चितम्॥७६॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः। डाकिनीयोगिनीयक्षवेताला भैरवादयः॥७७॥

श्री विष्णु बोले—विनायक का कवच तीनों लोकों में अति दुर्लभ है, वह पुराणों में अति गोप्य और शास्त्रों में भी दुर्लभ है॥६६॥ विघ्नेश्वर (गणेश) का कवच, जो समस्त विघ्नों का नाशक एवं परमोत्तम है, सामवेद की कौथुमीशाखा में मनोहर ढंग से कहा गया है॥६७॥ हे (सूर्य-पुत्र)! राज्य दिया जा सकता है, शिर दिया जा सकता है और प्राण भी दिये जा सकते हैं किन्तु प्राण संकट उपस्थित होने पर भी ऐसा कवच नहीं दिया जा सकता है॥६८॥ हे वत्स! जिनकी माया से अविर्भाव और तिरोभाव हुआ करते हैं, वे एकदन्त (गणेश) नित्य हैं, उन्हीं का यह कवच है॥६९॥ इनकी नित्य पूजा और स्तोत्र प्रत्येक कल्प में निरन्तर होते रहते हैं, इनके जन्म होने से पूर्व भी मुनिगण इनकी सेवा करते रहते हैं॥७०॥ जिस प्रकार मैं अपने अवतार में जन्म और शरीर धारण करता हूँ, उसी भाँति पार्वती के उदर से गणेश ने भी जन्म ग्रहण किया है॥७१॥ भारत में मुनिगण उनका कवच धारण कर जीवन्मुक्त हो जाते हैं और देवगण निःशंक होकर शत्रुओं का दलन करते हैं॥७२॥ कवच धारण करने वालों के समीप मृत्यु भयवश नहीं जाती है तथा उसकी आयु का व्यय, अशुभ और ब्रह्माण्ड में पराजय नहीं होता है॥७३॥ दश लाख जप करने से यह कवच सिद्ध हो जाता है और जिसे कवच सिद्ध हो जाता है, वह मृत्यु को भी जीतने में समर्थ होता है॥७४॥ कवच के सिद्ध होने पर वह पुरुष महासत्यवक्ता, चिरकालजीवी एवं पृथ्वीमण्डल में सर्वत्र विजयी होता है तथा केवल कवच के ग्रहण मात्र से पूज्य होता है॥७५॥ इस मालामन्त्र और पुण्य, मंगल एवं शुभ कवच के धारण करने वाले के समस्त पाप निश्चित नष्ट हो जाते हैं॥७६॥ भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी, यक्ष, वेताल, भैरव आदि, बालग्रह, ग्रह,

---

१ क. यस्यास्य ज०।

बालग्रहा ग्रहाश्चैव क्षेत्रपालादयस्तथा। वर्मणः शब्दमात्रेण पलायन्ते च भीरवः ॥७७॥
आधयो व्याधयश्चैव शोकाश्चैव भयावहाः। न यान्ति संनिधिं तेषां गरुडस्य यथोरगाः ॥७९॥
ऋजवे गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत्। खलाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥८०॥
संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री[1] देवो लम्बोदरः स्वयम् ॥८१॥
धर्मार्थिकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। सर्वेषां कवचानां च सारभूतमिदं मुने ॥८२॥
ओं[2] गं हुं श्री गणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम्। द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटं मे सदाऽवतु ॥८३॥
ओं ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति वै सततं पातु लोचनम्। तारकां पातु विघ्नेशः सततं धरणीतले ॥८४॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीमिति परं संततं पातु नासिकाम्। ओं गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम ॥८५॥
दन्तांश्च तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः। ओं लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु ॥८६॥
ओं क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदाऽवतु। ओं श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु ॥८७॥
ओं ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु। ओं क्लीं ह्रीमिति कट्टकालं पातु वक्षःस्थलं परम् ॥८८॥
करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननाशकृत्। प्राच्यां लम्बोदरः पातु चाऽऽग्नेय्यां विघ्ननायकः ॥८९॥
दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यां तु गजाननः। पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शंकरात्मजः ॥९०॥
कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च। ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः ॥९१॥

क्षेत्रपाल आदि तथा भीरु आदि जैसे उसके शब्दमात्र से पलायन कर जाते हैं ॥७७-७८॥ जैसे गरुड की सन्निधि में सर्प नहीं जाते वैसे आधि, व्याधि और भयावह शोक उसके समीप नहीं जाते हैं ॥७९॥ इसलिए सरल एवं गुरुभक्त शिष्य को यह कवच देना चाहिए किन्तु दुष्ट और पर-शिष्य को देने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥८०॥ संसारमोहन इस कवच के प्रजापति ऋषि, बृहती छन्द, स्वयं लम्बोदर देवता हैं तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है ॥८१-८२॥ हे मुने ! यह कवच सभी कवचों का सार भाग है। 'ओं गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा' यह मेरे मस्तक की रक्षा करे, बत्तीस अक्षर वाला मंत्र मेरे ललाट की सदा रक्षा करे ॥८३॥ 'ओं ह्रीं क्लीं श्रीं गं' मेरे नेत्र की सतत रक्षा करे। इस भूतल पर विघ्नेश मेरी पुतली की सतत रक्षा करें ॥८४॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं' यह निरन्तर नासिका की रक्षा करे। 'ओं गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा' यह मेरे अधर की रक्षा करे। सोलह अक्षर वाला मंत्र मेरे दाँत, तालु और जिह्वा की रक्षा करे ॥८५॥ 'ओं लं श्रीं लम्बोदराय स्वाहा' यह सदा कपोल की रक्षा करे ॥८६॥ 'ओं क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा' यह कान की रक्षा करे 'ओं श्रीं गं गजाननाय स्वाहा' सदा कंधे की रक्षा करे 'ओं ह्रीं विनायकाय स्वाहा' यह सदा पीठ की रक्षा करे ॥८७॥ 'ओं क्लीं ह्रीं' यह ठठरी और वक्षःस्थल की सदा रक्षा करे। ॥८८॥ विघ्ननाश करने वाला (मंत्र) हाथ, पैर और सर्वांग सदा की रक्षा करे। पूर्व दिशा में लम्बोदर रक्षा करें, अग्नि दिशा में विघ्ननायक, दक्षिण में विघ्नेश, नैर्ऋत्य में गजानन, पश्चिम में पार्वतीपुत्र, वायव्य में शंकरात्मज, उत्तर में परिपूर्णतम श्रीकृष्ण के अंश, ईशान में एकदन्त, ऊपर हेरम्ब, नीचे गणाधिप, चारों ओर सर्वपूज्य तथा स्वप्न और

---

१. ख. बृहती। २. क. ओं गो गं श्री०।

अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः । स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः ॥९२॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥९३॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले । वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज ॥९४॥
मया दत्तं च तुभ्यं च यस्मै कस्मै न दास्यसि । परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसंकटतारणम् ॥९५॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥९६॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥९७॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छंकरात्मजम् । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥९८॥
दत्त्वेदं सूर्यपुत्राय विरराम सुरेश्वरः । परमानन्दसंयुक्ता देवास्तस्थुः समीपतः ॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशपूजास्तवकवचकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

नारायण उवाच

देवास्तस्यां सभायां ते सर्वे संहृष्टमानसाः । गन्धर्वा मुनयः शैलाः पश्यन्तः सुमहोत्सवम् ॥१॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा । उवाच विष्णुं प्रणता देवेशं तत्र संसदि ॥२॥

जागरण में योगियों के गुरु मेरी रक्षा करें ॥८९-९२॥ हे वत्स ! इस संसारमोहन नामक परम अद्भुत कवच को मैंने तुम्हें बता दिया है, जो समस्त मन्त्रसमुदाय रूप शरीर धारण किए हुए है ॥९३॥ हे दिनकरात्मज ! पूर्व काल में भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक में वृन्दावन के रासमण्डल में मुझ विनीत को यह कवच प्रदान किया था और आज मैंने तुम्हें प्रदान किया है, अतः इसे जिस किसी को न दे देना। यह परमोत्तम, श्रेष्ठ, सब का पूज्य और समस्त संकट से बचाने वाला है ॥९४-९५॥ गुरु की सविधि अर्चना करके जो यह कवच कण्ठ में या दाहिनी भुजा में धारण करता है वह विष्णु है, इसमें संशय नहीं ॥९६॥ हे ग्रहेन्द्र ! सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ इस कवच की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥९७॥ पुनः इस कवच को बिना जाने जो शंकर-पुत्र गणेश की आराधना करता है, उसके सौ लाख जप करने पर भी मंत्र सिद्धिदायक नहीं होता है ॥९८॥ देवाधीश्वर भगवान् सूर्य-पुत्र शनि को यह संसारमोहन नामक कवच देकर चुप हो गए और देवगण भी परमानन्दमग्न होकर वहीं स्थित हो गए ॥९९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायणसंवाद में गणेश की पूजा, स्तुति और कवच वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

अध्याय १४

कार्तिकेय का जन्म-कथन

नारायण बोले—सभी सभासद—देवता, गन्धर्व, मुनि और पर्वतगण जो उस महोत्सव को देख रहे थे, अत्यन्त प्रसन्नचित्त थे ॥१॥ इसी बीच मन्द हास करती हुई कमल-वदना दुर्गा ने उस सभा में देवेश विष्णु से विनय-विनम्र होकर कहा ॥२॥

पार्वत्युवाच

त्वं पाता सर्वजगतां नाथ नाहं जगद्बहिः। कथं मत्स्वामिनो वीर्यममोघं रक्षितं प्रभो॥३॥
रतिभङ्गे कृते देवैर्ब्रह्मणा प्रेरितैस्त्वया। भूमौ निपतितं वीर्यं केन देवेन वै हृतम्॥४॥
सर्वे देवास्त्वत्पुरतस्तदन्विष्यन्तु सादरम्। अराजकं कथं युक्तं तिष्ठति त्वयि राजनि॥५॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः। उवाच देववर्गे च मुनिवर्गे च तिष्ठति ॥६॥

विष्णुरुवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम्। शिवस्यामोघवीर्यं यत्तत्पुरा केन निर्हृतम्॥७॥
सभामानयत क्षिप्रं न चेद्दण्डमिहार्हथ। स किंराजा न शास्ता यः प्रजाबाध्यश्च पाक्षिकः॥८॥
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम्। ऊचुः सर्वे शिवावाक्यैस्त्रासिताः पुरतो हरेः॥९॥

ब्रह्मोवाच

तद्वीर्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते। स वञ्चितो भवत्वत्र पुण्याहे पुण्यकर्मणि॥१०॥

महादेव उवाच

मद्वीर्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते। स वञ्चितो भवत्वत्र सेवने पूजने तव॥११॥

पार्वती बोलीं—हे नाथ! तुम समस्त जगत् के रक्षक हो और मैं भी इस जगत् से बाहर नहीं हूँ। अतः हे प्रभो! मेरे स्वामी का वह अमोघ वीर्य कहाँ सुरक्षित है (बताने की कृपा करें)॥३॥ तुम्हारी प्रेरणा से देवों और ब्रह्मा द्वारा मेरे रतिभंग किये जाने पर उनका वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा था, पता नहीं किस देव ने उसका अपहरण कर लिया॥४॥ (हमारे) सभी देवगण आपके सामने ही उसकी खोज करें—क्योंकि आप ऐसे राजा के अधिकार में ऐसी अराजकता उचित नहीं है॥५॥ पार्वती की ऐसी बात सुन कर जगदीश्वर भगवान् ने हँस कर देवों और मुनियों के समक्ष कहा॥६॥

विष्णु बोले—हे देवगण! मेरी बात सुनो! तुम लोगों ने पार्वती की बात तो सुन ली। पूर्वकाल में शिव के अमोघ वीर्य का किसने अपहरण किया?॥७॥ उसे इस सभा में शीघ्र उपस्थित करो अन्यथा दण्ड के भागी बनोगे। क्योंकि जो शासन ठीक से न करे, प्रजा पीड़ित हो या पक्षपात करे, वह निन्दनीय राजा है॥८॥ भगवान् विष्णु की बात सुनकर सभी ने आपस में विचार-परामर्श किया और पार्वती की बात से त्रस्त होकर उन लोगों ने भगवान् के सामने कहना आरम्भ किया॥९॥

ब्रह्मा बोले—इस पुण्य क्षेत्र भारत में तुम्हारे वीर्य का जिसने अपसरण किया है, वह पुण्य दिवस के पुण्य कर्म से वंचित रह जाये॥१०॥

महादेव बोले—इस पुण्य भूमि भारत में मेरे वीर्य का जिसने अपहरण किया है, वह तुम्हारी सेवा-पूजा से वंचित रहे॥११॥

यम उवाच

स वञ्चितो भवत्वत्र शरणागतरक्षणे । एकादशीव्रते चैव तद्वीर्यं येन निर्हृतम् ॥१२॥

इन्द्र उवाच

तद्वीर्यं निर्हृतं येन पापिनां पापमोचने । भवत्वत्र यशो लुप्तं तत्पुण्यं कर्म संततम् ॥१३॥

वरुण उवाच

भवत्वत्र कलौ जन्म[1] वर्षे स्याद्भारते हरे । शूद्रयाजकपत्न्याश्च गर्भे तद्येन निर्हृतम् ॥१४॥

कुबेर उवाच

न्यासहारी स भवतु विश्वासघ्नश्च मित्रहा । सत्यघ्नश्च कृतघ्नश्च तद्वीर्यं येन निर्हृतम् ॥१५॥

ईशान उवाच

परद्रव्यापहारी च स भवत्वत्र भारते । नरघाती गुरुद्रोही तद्वीर्यं येन निर्हृतम् ॥१६॥

रुद्रा ऊचुः

ते मिथ्यावादिनः सन्तु भारते पारदारिकाः । गुरुनिन्दारताः शश्वत्तद्वीर्यं यैश्च निर्हृतम् ॥१७॥

कामदेव उवाच

कृत्वा प्रतिज्ञां यो मूढो न संपालयते भ्रमात् । भाजनं तस्य पापस्य स भवेद्येन तद्धृतम् ॥१८॥

यम बोले—उस वीर्य का अपहरण जिसने किया है, वह शरणागत की रक्षा और एकादशी व्रत से वंचित रह जाये ॥१२॥

इन्द्र बोले—उस वीर्य का जिसने अपहरण किया है, वह पापियों को पाप मुक्त करने में असमर्थ रहे और उसका यश एवं पुण्य कर्म निरन्तर लुप्त होता रहे ॥१३॥

वरुण बोले—हे हरे ! जिसने उसका अपहरण किया है, वह भारतवर्ष में कलि के समय शूद्र को यज्ञ कराने वाले की पत्नी के गर्भ से जन्म ग्रहण करे ॥१४॥

कुंवेर बोले—उस वीर्य का जिसने अपहरण किया है, वह न्यास (धरोहर) का अपहर्त्ता, विश्वासघाती, मित्रहन्ता, सत्यहन्ता एवं कृतघ्न हो ॥१५॥

ईशान बोले—जिसने उस वीर्य का अपहरण किया है वह इस भारत में परधन का अपहारी, नरघाती और गुरुद्रोही हो ॥१६॥

रुद्रगण बोले—उस वीर्य का जिन लोगों ने अपहरण किया है, वे भारत में झूठ बोलने वाले, परस्त्री-लम्पट और गुरु की निन्दा में रत रहें ॥१७॥

कामदेव बोले—जिसने उस (वीर्य) का अपहरण किया है, वह जो मूढ़ भ्रमवश प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता है, उसके पाप का भागी हो ॥१८॥

---

१ क. ०न्म संन्यासो वा भवान्तरे ।

स्ववैद्यावूचतुः

मातुःपितुर्गुरोश्चैव स्त्रीपुत्राणां च पोषणे । भवेतां वञ्चितौ तौ च याभ्यां वीर्यं च तद्धृतम् ॥१९॥

सर्वे देवा ऊचुः

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारो भवन्त्वत्र च भारते । अपुत्रिणो दरिद्राश्च यैश्च वीर्यं हि तद्धृतम् ॥२०॥

देवपत्न्य ऊचुः

ता निन्दन्तु स्वभर्तारं गच्छन्तु परपूरुषम् । सन्तु बुद्धिविहीनाश्च याभिर्वीर्यं हि तद्धृतम् ॥२१॥
देवानां वचनं श्रुत्वा देवीनां च हरिः स्वयम् । कर्मणां साक्षिणं धर्मं सूर्यं चन्द्रं हुताशनम् ॥२२॥
पवनं पृथिवीं तोयं संध्ये रात्रिदिवं मुने । उवाच जगतां कर्ता पाता शास्ता जगत्त्रये ॥२३॥

विष्णुरुवाच

देवैर्न निर्हृतं वीर्यं तदेतत्केन निर्हृतम् । तदमोघं भगवतो महेशस्य जगद्गुरोः ॥२४॥
यूयं च साक्षिणो विश्वे सततं सर्वकर्मणाम् । युष्माभिर्निर्हृतं किंवा किं भूतं वक्तुमर्हथ ॥२५॥
ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कम्पिताश्च ते । परस्परं समालोच्य क्रमेणोचुः पुरो हरेः ॥२६॥

धर्म उवाच

रतेरुत्तिष्ठतो वीर्यं पपात वसुधातले । मया ज्ञातममोघं तच्छंकरस्य प्रकोपतः ॥२७॥

स्ववैद्य (अश्विनीकुमार) बोले—जिन्होंने वीर्य का अपहरण किया है, वे माता, पिता, गुरु, स्त्री और पुत्र के पालन-पोषण से वंचित रह जायें ॥१९॥

देवगण बोले—जिन्होंने उस वीर्य का अपहरण किया है, वे भारत में झूठी गवाही देने वाले, निपूत और दरिद्र हों ॥२०॥

देवपत्नियाँ बोलीं—जिन स्त्रियों ने उस वीर्य का हरण किया है, वे अपने पति की निन्दा करने वाली एवं परपुरुषगामिनी हों और सदैव बुद्धिहीना हों ॥२१॥ हे मुने ! देवों और देवियों की ऐसी बातें सुन कर जगत् के कर्ता और तीनों लोकों के शासक एवं रक्षक भगवान् विष्णु ने स्वयं कर्मों के साक्षी धर्म, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल, दोनों संध्याओं, दिन और रात्रि से कहा ॥२२-२३॥

विष्णु बोले—जगद्गुरु एवं भगवान् महेश्वर के अमोघ वीर्य का अपहरण यदि देवों ने नहीं किया है तो किसने उसका अपहरण किया है ? समस्त विश्व में तुम्ही लोग कर्मों के निरन्तर साक्षी हो, अतः तुम्हीं लोगों ने उसका अपहरण किया है या उसका क्या हुआ, बताओ ॥२४-२५॥ उस समय सभा में ईश्वर की ऐसी बातें सुन कर वे लोग काँपने लगे और आपस में परामर्श कर के भगवान् के सामने क्रमशः कहना आरम्भ किया ॥२६॥

धर्म बोले—सुरत के समय क्रुद्ध शंकर के उठते ही उनका वह अमोघ वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा यह मैं जानता हूँ ॥२७॥

क्षितिरुवाच

वीर्यं वोढुमशक्ताऽहं तद्ब्रह्मौ न्यक्षिपं पुरा। अतीव दुर्वहं ब्रह्मन्नबलां क्षन्तुमर्हसि ॥२८॥

अग्निरुवाच

वीर्यं वोढुमशक्तोऽहं न्यक्षिपं शरकानने। दुर्बलस्य जगन्नाथ किं यशः किं च पौरुषम् ॥२९॥

वायुरुवाच

शरेषु पतितं वीर्यं सद्यो बालो बभूव ह। अतीव सुन्दरो विष्णो स्वर्णरेखानदीतटे ॥३०॥

सूर्य उवाच

रुदन्तं बालकं दृष्ट्वाऽगममस्ताचलं प्रति। प्रेरितः कालचक्रेण निशि संस्थातुमक्षमः ॥३१॥

चन्द्र उवाच

रुदन्तं बालकं प्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः। जगाम स्वालयं विष्णो गच्छन्बदरिकाश्रमात् ॥३२॥

जलमुवाच

अमुं रुदन्तमानीय स्तनं दत्त्वा स्तनार्थिने। वर्धयामासुरीशस्य तं ताः सूर्याधिकप्रभम् ॥३३॥

संध्ये ऊचतुः

अधना कृत्तिकानां च षण्णां तत्पोष्यपुत्रकः। तन्नाम चक्रुस्ताः प्रेम्णा कार्तिकेय इति स्वयम् ॥३४॥

क्षिति बोली—हे ब्रह्मन्! उस अत्यन्त दुर्वह वीर्य का वहन करने में मैं असमर्थ थी, इस लिए उसे मैंने पहले ही अग्नि में डाल दिया। आप मुझ अबला को क्षमा करें ॥२८॥

अग्नि बोले—हे जगन्नाथ! उस वीर्य को वहन करने में मैं भी असमर्थ होकर उसे शर (सरपत) के जंगल में छोड़ दिया, क्योंकि दुर्बल पुरुष का यश और पौरुष क्या है? (अर्थात् कुछ नहीं) ॥२९॥

वायु बोले—हे विष्णो! शरों (सरपतों) में गिरा हुआ वीर्य तुरन्त बालक रूप हो गया, जो अत्यन्त सुन्दर एवं स्वर्णरेखा नदी के तट पर विराजमान हुआ ॥३०॥

सूर्य बोले—मैंने रोदन करते हुए उस बालक को देखा और अस्ताचल चला गया क्योंकि कालचक्र से प्रेरित होने के नाते रात्रि में मैं स्थित नहीं रह सकता ॥३१॥

चन्द्र बोले—हे विष्णो! बदरिकाश्रम से जाती हुई कृत्तिकाओं ने उस रोदन करते हुए बालक को लेकर अपने घर को प्रस्थान किया ॥३२॥

जल बोले—(शिव के) उस रोदन करते बालक को, जो दुग्ध-पान के लिए मचल रहा था और सूर्य से अधिक प्रभापूर्ण था, कृत्तिकाओं ने दुग्धपान कराया और वे पालन-पोषण करने लगीं ॥३३॥

संध्याएँ बोलीं—इस समय वह पुत्र छह कृत्तिकाओं का पोष्य हुआ है और प्रेमवश उन लोगों ने उसका 'कार्तिकेय' नामकरण भी स्वयं किया है ॥३४॥

रात्रिरुवाच

न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम् । प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पोष्टा तस्य पुत्रकः ॥३५॥

दिनमुवाच

यानि यानि च वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च । प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासरेव तम् ॥३६॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संतुष्टो मधुसूदनः । ते सर्वे हरिमित्यूचुः सभायां हृष्टमानसाः ॥३७॥
पुत्रस्य वार्तां संप्राप्य पार्वती हृष्टमानसा । कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौ बहुधनानि च ॥३८॥
ददौ सर्वाणि विप्रेभ्यो वासांसि विविधानि च ॥३९॥
लक्ष्मीः सरस्वती मेना सावित्री सर्वयोषितः । विष्णुश्च सर्वदेवाश्च ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धनम् ॥४०॥

इति० श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० कार्तिकेयजन्मकथनं
नाम चतुदशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

पुत्रस्य वार्तां संप्राप्य पार्वत्या सह शंकरः । प्रेरितो विष्णुना देवैर्मुनिभिः पर्वतैर्मुने ॥१॥

रात्रि बोली—वे कृत्तिकाएँ उस बालक को अपनी आँखों के सामने से कभी अलग नहीं करती हैं। वह प्राणों से भी अधिक प्रेमपात्र है। जो पालन करता है, उसी का पुत्र होता है ॥३५॥

दिन बोला—तीनों लोकों में जो अति स्वादिष्ठ एवं दुर्लभ पदार्थ हैं, वे ही उस बच्चे को उन्होंने भोजन कराये ॥३६॥

इस प्रकार सभा में सुप्रसन्न होकर उन लोगों ने भगवान् से कहा और उनकी बातें सुनकर भगवान् मधुसूदन भी अति प्रसन्न हुए ॥३७॥ पुत्र की वार्ता सुनकर पार्वती अति हर्षित हुईं और उन्होंने ब्राह्मणों को पुनः करोड़ों रत्न और बहुत धन प्रदान किये। सभी ब्राह्मणों को अनेक भाँति के वस्त्र भी दिये ॥३८-३९॥ अनन्तर लक्ष्मी, सरस्वती, मेना, सावित्री आदि समस्त स्त्रियों तथा समस्त देवों समेत विष्णु ने ब्राह्मणों को धन दान दिया ॥४०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
कार्तिकेय-जन्म-कथन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

अध्याय १५

नन्दकेश्वर और कार्तिकेय का संवाद

नारायण बोले—हे मुने! पार्वती समेत शिव ने पुत्र का समाचार जानने के उपरान्त भगवान् विष्णु, देवों, मुनियों और पर्वतों द्वारा प्रेरित होकर महाबली एवं पराक्रमी दूतों को (उसे लाने के लिए) भेजा। जिनमें

दूतान्प्रस्थापयामास महाबलपराक्रमान्। वीरभद्रं विशालाक्षं शङ्कुकर्णं[1] कबन्धकम् ॥२॥
नन्दीश्वरं[2] महाकालं वज्रदन्तं [3]भगन्दरम्। गोधामुखं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम्॥३॥
लक्षं च क्षेत्रपालानां भूतानां च त्रिलक्षकम्। वेतालानां चतुर्लक्षं यक्षाणां पञ्चलक्षकम्॥४॥
कूष्माण्डानां चतुर्लक्षं त्रिलक्षं ब्रह्मरक्षसाम्। डाकिनीनां चतुर्लक्षं योगिनीनां त्रिलक्षकम्॥५॥
रुद्रांश्च भैरवांश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान्। [4]अन्यांश्च विकृताकारानसंख्यानपि नारद॥६॥
ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रास्त्रपाणयः। कृत्तिकानां च भवनं वेष्टयामासुरुज्ज्वलम्॥७॥
दृष्ट्वा तान्कृत्तिकाः सर्वा[5] भयविह्वलमानसाः। कार्तिकं कथयामासुर्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥८॥

कृत्तिका ऊचुः

वत्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम्। न जानीमो वयं कस्य करालानि च बालक॥९॥

कार्तिकेय उवाच

भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वो मयि स्थिते। दुर्निवार्यः कर्मपाको मातरः केन वार्यते॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सेनानीर्नन्दिकेश्वरः। पुरतः कार्तिकेयस्य तिष्ठंस्तासामुवाच ह॥११॥

नन्दिकेश्वर उवाच

भ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातुश्चपि शुभावहम्। प्रेषितस्य सुरेन्द्रस्य संहर्तुः शंकरस्य च॥१२॥

वीरभद्र, विशालाक्ष, शंकुकर्ण, कबन्धक, नंदीश्वर, महाकाल, वज्रदन्त, भगन्दर, गोधामुख, प्रज्वलित अग्नि-शिखा के समान दधिमुख, एक लाख क्षेत्रपाल, तीन लाख भूतगण, चार लाख वेताल, पांच लाख यक्ष, चार लाख कूष्माण्ड, तीन लाख ब्रह्मराक्षस, तीन लाख डाकिनियाँ और तीन लाख योगिनियाँ थीं॥१-५॥ हे नारद! शिव के समान पराक्रमी रुद्रगण, भैरवगण और अन्य विकृत आकार वाले असंख्य गण थे॥६॥ शिव के इन दूतों ने हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर कृत्तिकाओं के उज्ज्वल भवन को चारों ओर से घेर लिया॥७॥ अनन्तर सभी कृत्तिकाओं के चित्त इन दूतों को देखकर आकुल हो गये। वे ब्रह्मतेज से देदीप्यमान कार्तिकेय से कहने लगीं॥८॥

कृत्तिकाएँ बोलीं—हे वत्स! हे बालक! असंख्य सेनाओं ने आकर गृह को चारों ओर से घेर लिया है, हम लोग नहीं जानतीं कि—ये भयंकर सेनायें किसकी हैं॥९॥

कार्तिकेय बोले—हे मंगलमयी! भय मत करो, मेरे रहते तुम्हें भय क्या है? हे माताओ! इस दुर्निवार कर्मफल को कौन रोक सकता है? ॥१०॥ इसी बीच सेनानायक नन्दिकेश्वर ने उनके समक्ष कार्तिकेय से कहा ॥११॥

नन्दिकेश्वर बोले– हे भ्रातः! माता जी का शुभ सन्देश मुझसे सुनो तथा प्रेषित सुरेन्द्र एवं संहर्ता

---

१ क. करक्रमम्। २ क. ०कार्यं व०। ३ क. भलन्दनम्। ४ क. भूतानां च पिशाचानामसं०। ५ क. ०वान्मि०।

कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः। सभायां ते वसन्तश्च गणेशोत्सवमङ्गले ॥१३॥
शैलेप्रन्द्रकन्या तं विष्णुं जगतां परिपालकम्। संबोध्य कथयामास तवान्वेषणकारणम् ॥१४॥
पप्रच्छ देवान्विष्णुस्तान्क्रमेणाऽऽवाप्तिहेतवे। प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकं च यथोचितम् ॥१५॥
त्वमत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम्। सर्वे धर्मादयो देवा धर्माधर्मस्य साक्षिणः ॥१६॥
या बभूव रहः क्रीडा पार्वतीशिवयोः पुरा। दृष्टस्य च सुरैः शंभोर्वीर्यं भूमौ पपात ह ॥१७॥
भूमिस्तदक्षिपद्वह्नौ वह्निश्च शरकानने। ततो लब्धः कृत्तिकाभिरभूभिर्गच्छ साम्प्रतम् ॥१८॥
तवाभिषेकं विष्णुश्च करिष्यति सुरैः सह। शस्त्रं लब्ध्वाऽखिलं देव तारकं संहनिष्यसि ॥१९॥
पुत्रस्त्वं विश्वसंहर्तुस्त्वां गोप्तुं न क्षमा इमाः। नाग्निं गोप्तुं यथा शक्तः शुष्कवृक्षः स्वकोटरे ॥२०॥
दीप्तिमांस्त्वं च विश्वेषु तासां गेहे न शोभसे। यथा पतन्महाकूपे द्विजराजो न राजते ॥२१॥
करोषि जगदालोकं नाच्छन्नोऽस्यङ्गतेजसा। यथा सूर्यः कराच्छन्नो न भवेत्पुरुषस्य च ॥२२॥
विष्णस्त्वं च जगद्व्यापी नाऽऽसां व्याप्योऽसि शांभव। यथा न केषां व्याप्यं च तत्सर्वं व्यापकं नभः ॥२३॥
योगीन्द्रो नानलिप्तस्त्वं भोगी च परिपोषणे। नैव लिप्तो यथाऽऽत्मा च कर्मभोगेषु जीविनाम् ॥२४॥
विश्वाधारस्त्वमीशश्च नामृते संभवेत्स्थितिः। सागरस्य यथा नद्यां सरितामाश्रयस्य च ॥२५॥

शिव का भी (संदेश सुनो)। कैलाश पर्वत पर ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि देवगण सभा में स्थित होकर गणेश जी का मंगलोत्सव मना रहे थे। इसी बीच शैलराज की पुत्री पार्वती ने समस्त जगत् के पालन करने वाले भगवान् विष्णु को सम्बोधित कर तुम्हारे खोजने के विषय में कहा ॥१२-१४॥ अनन्तर विष्णु ने तुम्हारी प्राप्ति के लिए क्रमशः सभी देवों से पूछा और उन लोगों ने एक-एक करके यथोचित उत्तर भी प्रदान किया ॥१५॥ धर्माधर्म के साक्षी सभी धर्म आदि देवों ने ईश्वर से बताया कि तुम इसी कृत्तिकाओं के स्थान में रह रहे हो। पूर्वकाल में शिव-पार्वती का जो एकान्तवास हुआ था, उसमें शिव जी का वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा था, जिसे सभी देवों ने देखा था। पृथ्वी ने उसे अग्नि में डाल दिया और अग्नि ने सरपत के जंगल में। उसी स्थान से कृत्तिकाओं ने तुम्हें प्राप्त किया, अतः तुम अभी चलो। हे देव! समस्त देवों समेत भगवान् विष्णु तुम्हारा अभिषेक करेंगे और समस्त शस्त्र प्राप्त होने पर आप तारकासुर का वध करेंगे। तुम समस्त विश्व के संहर्ता भगवान् शिव के पुत्र हो। ये सब तुम्हें छिपाने में उसी भाँति असमर्थ हैं जैसे सूखा वृक्ष अपने कोटर में स्थित अग्नि को ॥१६-२०॥। समस्त विश्व में तुम देदीप्यमान हो, जिस प्रकार महाकूप में गिरे हुए चन्द्रमा की शोभा नहीं होती है, उसी भाँति इन (कृत्तिकाओं) के घर में रहने से तुम्हारी शोभा नहीं हो रही है ॥२१॥ तुम अपने अंगतेज से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित कर रहे हो, किन्तु इन लोगों के तेज से उसी प्रकार आच्छन्न नहीं हो, जैसे पुरुष के हाथ से सूर्य नहीं ढके जा सकते। ॥२२॥ हे शम्भुपुत्र! तुम समस्त जगत् में व्याप्त रहने वाले विष्णु हो, जिस प्रकार आकाश किसी (एक का) व्याप्त न होकर समस्त का व्यापक है, उसी भाँति तुम इन लोगों के व्याप्य नहीं हो ॥२३॥ तुम योगिराज हो और भलीभाँति पोषण करने में भोगी हो, किन्तु इसमें लिप्त नहीं हो, जैसे जीवों के कर्मभोगों में आत्मा नहीं लिप्त होता है ॥२४॥ तुम समस्त विश्व के आधार और अधीश्वर हो। जिस प्रकार सरिताओं के आश्रयभूत सागर की स्थिति नदी में नहीं हो सकती है, उसी प्रकार तुम्हारी स्थिति अमृत में सम्भव नहीं है ॥२५॥ जिस प्रकार गरुड़

नहि सर्वेश्वरावासः संभवेत्कृत्तिकालये । गरुडस्य यथा वासः क्षुद्रे च चटकोदरे ॥२६॥
त्वां च देवा न जानन्ति भक्तानुग्रहविग्रहम् । गुणानां तेजसां राशिं यथाऽऽत्मानमयोगिनः ॥२७॥
त्वामनिर्वचनीयं च कथं जानन्ति कृत्तिकाः । यथा परां हरेर्भक्तिमभक्ता मूढचेतसः ॥२८॥
भ्रातर्यं यं न जानन्ति ते तं कुर्वन्त्यनादरम् । नाऽऽद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकावासं च पङ्कजम् ॥२९॥

कार्तिकेय उवाच

भ्रातः सर्वं विजानामि ज्ञानं त्रैकालिकं च यत् । ज्ञानी त्वं का प्रशंसा ते यतो मृत्युंजयाश्रितः ॥३०॥
कर्मणा जन्म येषां वा यासु यासु च योनिषु । तासु ते निर्वृतिं भ्रातर्नाऽऽप्नुवन्ति च संततम् ॥३१॥
ये यत्र सन्ति सन्तो वा मूढा वा कर्मभोगतः । तेऽपि तं बहु मन्यन्ते मोहिता विष्णुमायया ॥३२॥
सांप्रतं जगतां माता विष्णुमाया सनातनी । सर्वाद्या सर्वरूपा च सर्वदा सर्वमङ्गला ॥३३॥
शैलेन्द्रपत्नी गर्भे सा चालभज्जन्म भारते । दारुणं च तपस्तप्त्वा संप्राप च्छंकरं पतिम् ॥३४॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव कृत्रिमम् । सर्वे कृष्णोद्भवाः काले विलीनास्तत्र केवलम् ॥३५॥

का निवास क्षुद्र चटक (गौरइया) पक्षी के उदर में नहीं हो सकता है, उसी भाँति सर्वाधीश्वर का आवास कृत्तिकाओं के घर में असम्भव है ॥२६॥ तुम भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करते हो, गुणों और तेजों की राशि हो, तुम्हें देवगण उसी भाँति नहीं जानते हैं, जैसे योग न साधने वाले आत्मा को ॥२७॥ तुम अनिर्वचनीय को कृतिकाएँ किस प्रकार जानती हैं, जैसे भक्ति न करने वाले अज्ञानी मनुष्य भगवान् की पराभक्ति को (नहीं जानते हैं) ॥२८॥ अतः हे भ्रातः ! जो जिसे नहीं जानते हैं वे उसका अनादर करते हैं जैसे एक जगह रह कर भी मेढक कमल का आदर नहीं करते ॥२९॥

कार्तिकेय बोले—हे भ्रातः ! मैं तीनों काल का सम्पूर्ण ज्ञान रखता हूँ। और तुम भी मृत्युञ्जय (शिव) के आश्रित रहने के नाते ज्ञानी हो, इसलिए तुम्हारी क्या प्रशंसा की जाये ॥३०॥ हे भ्रातः ! कर्मवश जिनका जिन-जिन योनियों में जन्म हुआ है, वे निरन्तर उनसे छुटकारा नहीं पाते हैं ॥३१॥ क्योंकि कर्मभोगानुसार महात्मा या मूर्ख कोई भी जिस योनि का शरीर धारण करता है वह विष्णु की माया से मोहित होने के नाते उसी को बहुत सम्मानित समझता है ॥३२॥ सम्प्रति जगत् की माता पार्वती, जो भगवान् विष्णु की माया, सनातनी, सर्वाद्या, सर्वरूपा, सर्वदा सर्वमंगला हैं, भारत में शैलराज (हिमालय) की पत्नी (मैना) के गर्भ से प्रकट हुई हैं, और भीषण तप करके शिव को पतिरूप में प्राप्त किया है ॥३३-३४॥ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी मिथ्या और कृत्रिम हैं। सभी भगवान् श्रीकृष्ण से उत्पन्न होकर अन्त में उन्हीं में विलीन हो जाते हैं ॥३५॥ प्रत्येक कल्प में जगज्जननी पार्वती

कल्पे कल्पे जगन्माता माता मे प्रतिजन्मनि। यज्जन्ममायया बद्धो नित्यः सृष्टिविधावहम् ॥३६॥
प्रकृतेरुद्भवाः सर्वा जगत्यां सर्वयोषितः। काश्चिदंशाः कलाः काश्चित्कलांशांशेन काश्चन ॥३७॥
कृत्तिका ज्ञानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतेः कलाः। स्तन्येनाऽऽभिर्वर्धितोऽहमुपहारेण संततम् ॥३८॥
तासामहं पोष्यपुत्रो मदम्बाः पोषणादिमाः। तस्याश्च प्रकृतेः पुत्रो गतस्त्वत्स्वामिवीर्यतः ॥३९॥
न गर्भजोऽहं शैलेन्द्रकन्याया नन्दिकेश्वर। सा च मे धर्मतो माता तथेमा सर्वसंमताः ॥४०॥
स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया। अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यकाः ॥४१॥
सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा ॥४२॥
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः ॥४३॥
इमाश्च सर्वसिद्धिज्ञाः परमैश्वर्यसंयुताः। न क्षुद्रा ब्रह्मणः कन्यास्त्रिषु लोकेषु पूजिताः ॥४४॥
विष्णुना प्रेरितस्त्वं च शंभोः पुत्रसमो महान्। गच्छ यामि त्वया सार्धं द्रक्ष्यामि सुरसंचयम् ॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० नन्दिकार्तिकेयसंवादो नाम
पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

प्रति जन्म में मेरी माता होती हैं और मैं सृष्टि के समय माया द्वारा नित्य आबद्ध होकर उन्हीं से जन्म ग्रहण करता हूँ। ॥३६॥ सारे जगत् की समस्त स्त्रियाँ प्रकृति से ही उत्पन्न हुई हैं, यह सत्य है—कोई प्रकृति का अंश, कोई कला और कोई कला का अंशांश भाग हैं ॥३७॥ ज्ञानवती एवं योगिनी कृत्तिकाएँ भी प्रकृति की कलाएँ हैं, जिन्होंने अपने स्तन-दुग्ध का उपहार देकर मेरा सम्बर्द्धन किया है ॥३८॥ मैं उनका योग्य पुत्र हूँ और वे मेरी माताएँ हैं। तुम्हारे स्वामी के वीर्य द्वारा मैं उत्पन्न हुआ हूँ, अतः प्रकृति (पार्वती) का भी पुत्र हूँ, किन्तु हे नन्दिकेश्वर! शैलेन्द्र-कन्या (पार्वती) का मैं गर्भजन्य पुत्र नहीं हूँ। वह हमारी धर्म की माता हैं। उसी प्रकार ये भी मेरी सर्वसम्मत माताएँ हैं ॥३९-४०॥ क्योंकि स्तन का दूध पिलाने वाली, गर्भ धारण कर उत्पन्न करने वाली, भोजन देने वाली, गुरु की पत्नी, अभीष्ट देव की पत्नी, पिता की पत्नी (माता), कन्या, गर्भिणी कन्या, भगिनी, पुत्र की पत्नी (बहू), स्त्री की माता (सास), माता की माता (नानी), पिता की माता (दादी), सहोदर की पत्नी, माता और पिता की भगिनी और मातुलानी (मामी), ये सोलह प्रकार की स्त्रियाँ मनुष्यों की वेदविहित माता होती हैं ॥४१-४३॥ इसलिए सम्पूर्ण सिद्धियों को जाननेवाली एवं परमैश्वर्यसम्पन्न ये ब्रह्मा की कन्यायें क्षुद्र नहीं हैं। इनकी तीनों लोकों में पूजा होती है ॥४४॥ तुम भी शिव के महान् पुत्र के समान हो और भगवान् विष्णु के भेजे हुए हो, अतः चलो, तुम्हारे साथ मैं भी चलकर देव-समूह का दर्शन करूँगा ॥४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में नन्दि-कार्तिकेय-संवाद-कथन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा तं शीघ्रं बोधयित्वा च कृत्तिकाः। उवाच नीतियुक्तं च वचनं शंकरात्मजः ॥१॥

कार्तिकेय उवाच

यास्यामि शंकरस्थानं द्रक्ष्यामि सुरसंचयम्। मातरं बन्धुवर्गांश्चाप्याऽऽज्ञां मे दत्त मातरः ॥२॥
दैवाधीनं जगत्सर्वं जन्म कर्म शुभाशुभम्। संयोगश्च वियोगश्च न च दैवात्परं बलम् ॥३॥
कृष्णायत्तं च तद्दैवं स च दैवात्परस्ततः। भजन्ति सततं सन्तः परमात्मनमीश्वरम् ॥४॥
दैवं वर्धयितुं शक्तः क्षयं कर्तुं स्वलीलया। न दैवबद्धस्तद्भक्तश्चाविनाशीति निर्णयः ॥५॥
तस्माद्भजत गोविन्दं मोहं त्यजत दुःखदम्। सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युभयापहम् ॥६॥
परमानन्दजनकं मोहजालनिकृन्तनम्। शश्वद्भजन्ति यत्सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७॥
कोऽहं भवाब्धौ युष्माकं का वा यूयं ममाम्बिकाः। तत्कर्मस्रोतसां सर्वं पुञ्जीभूतं च फेनवत् ॥८॥
संश्लेषं वा वियोगं वा सर्वमीश्वरचिन्तया। ब्रह्माण्डमीश्वराधीनं न स्वतन्त्रं विदुर्बुधाः ॥९॥
जलबुद्बुदवत्सर्वमनित्यं च जगत्त्रयम्। मायामनित्ये कुर्वन्ति मायया मूढचेतसः ॥१०॥

अध्याय १६

कार्तिकेय का आगमन

नारायण बोले—शिव के पुत्र कुमार ने इतना उन (नन्दिकेश्वर) से कहकर शीघ्र कृत्तिकाओं को भी समझाया और पुनः उन लोगों से नीतियुक्त वचन कहना आरम्भ किया ॥१॥

कार्तिकेय बोले—हे माताओ! मैं देवों को देखने के लिए शंकर जी के यहाँ (कैलाश) जा रहा हूँ, वहाँ माता जी एवं बन्धु-वर्गों का दर्शन करूँगा, अतः आज्ञा देने की कृपा करें॥२॥ (कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि) समस्त जगत् जन्म, शुभाशुभ कर्म और संयोग-वियोग सभी कुछ दैव (भाग्य) के अधीन रहता है, अतः दैवबल से बढ़कर कोई दूसरा बल नहीं है॥३॥ और वह दैव भगवान् श्रीकृष्ण के अधीन है क्योंकि वे दैव से भी परे हैं। इसीलिए उस परमात्मा ईश्वर को सन्त लोग सदैव भजते हैं॥४॥ वह लीला की भाँति दैव को बढ़ा सकता है और नष्ट कर सकता है। उसका भक्त दैव के अधीन नहीं रहता है, अविनाशी होता है, ऐसा सभी का निर्णय है॥५॥ इसलिए दुःखदायी मोह का त्याग कर गोविन्द को भजो, जो सुखदायक, मोक्षप्रद, सारभूत, जन्म, मृत्यु एवं भय के नाशक, परमानन्द के जनक तथा मोहजाल को काटने वाले हैं और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि जिनका निरन्तर भजन करते रहते हैं॥६-७॥ क्योंकि इस संसार-सागर में तुम लोगों का मैं कौन हूँ और तुम लोग हमारी कौन हो! सब कर्मों की धाराओं के पूंजीभूत फेन के समान हैं॥८॥ (सभी का) संयोग-वियोग आदि सब कुछ ईश्वर के अधीन है, यहाँ तक कि समस्त ब्रह्माण्ड भी ईश्वर के अधीन है, स्वतंत्र नहीं है, ऐसा विद्वानों का कहना है॥९॥ जल के बुल्ले की भाँति तीनों जगत् अनित्य (नश्वर) हैं। इस नश्वर जगत् में मायामोहित चित्त वाले ही माया का कार्य करते हैं॥१०॥ किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण में दत्त-

सन्तस्तत्र न लिप्यन्ते वायुवत्कृष्णचेतसः। तस्मान्मोहं परित्यज्य चाऽज्ञप्ति दत्त मातरः ॥११॥
इत्येवमुक्त्वा ता नत्वा सार्धं शंकरपार्षदैः। यात्रां चकार भगवान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम्। विश्वकर्मकृतं रम्यं हीरकेण विराजितम् ॥१३॥
सद्रत्नसाररचितं माणिक्येन विराजितम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैश्च शोभितम् ॥१४॥
मणीन्द्रदर्पणैः श्वेतचामरैरतिदीपितम् । क्रीडार्हमन्दिरैरम्यैश्चित्रितैश्चित्रितं वरम् ॥१५॥
शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम्। प्रस्थापितं च पार्वत्या वेष्टितं पार्षदैर्वरैः ॥१६॥
तमारुहन्तं यानं ता हृदयेन विदूयता। सहसा चेतनां प्राप्य मुक्तकेश्यः शुचाऽऽतुराः ॥१७॥
दृष्ट्वा च स्वपुरः स्कन्दं स्तम्भिताश्चातिशोकतः। उन्मत्ता इव तत्रैव वक्तुमारेभिरे भिया ॥१८॥

कृत्तिका ऊचुः

किं कुर्मः क्व च यास्यामो वयं वत्स त्वदाश्रयाः। विहायास्मान्क्व यासि त्वं नायं धर्मस्तवाधुना ॥१९॥
स्नेहेन वर्धितोऽस्माभिः पुत्रोऽस्माकं स्वधर्मतः। नायं धर्मो मातृवर्गाननुरक्तः सुतस्त्यजेत् ॥२०॥
इत्युक्त्वा कृत्तिकाः सर्वाः कृत्वा वक्षसि तं सुतम्। पुनर्मूर्च्छामवापुस्ताः सुतविच्छेददारुणम् ॥२१॥
कुमारो बोधयित्वा ता अध्यात्मवचनेन वै। ताभिश्च पार्षदैः सार्धमारुरोह रथं मुने ॥२२॥

चित्त वाले सज्जन लोग इसमें वायु की भाँति रहकर लिप्त नहीं होते हैं। इसलिए हे माताओ! मोह छोड़कर मुझे आज्ञा प्रदान करो ॥११॥ इस भाँति उन्हें समझा-बुझाकर एवं उन्हें नमस्कार करके भगवान् कुमार ने श्री हरि का स्मरण करते हुए शंकर-पार्षदों के साथ यात्रा आरम्भ की ॥१२॥ इसी बीच उन्हें वहाँ एक उत्तम रथ दिखायी पड़ा, जो विश्वकर्मा द्वारा सुरचित, रम्य, हीरा जड़ित, उत्तम रत्नों के सारभाग से निर्मित, माणिक्य से सुशोभित और पारिजात के पुष्पों की मालाओं से सुशोभित था ॥१३-१४॥ उसमें उत्तम मणियों के दर्पण सुसज्जित थे तथा वह श्वेत चामरों से अति दीपित और रम्य एवं चित्रविचित्र क्रीड़ा मन्दिरों से चित्रित होने के नाते अत्युत्तम था ॥१५॥ वह अतिविस्तृत था। उसमें सौ पहिये (चक्के) लगे थे। वह मन की भाँति चलने वाला और मनोहर था। उसे पार्वती जी ने अनेक उत्तम पार्षदों समेत भेजा था ॥१६॥ उनके रथ पर बैठते समय कृत्तिकाओं को महान् हार्दिक दुःख हुआ। वे सहसा चेतना प्राप्त कर केश खोले एवं शोक से उद्विग्न हो गईं ॥१७॥ अति शोक के कारण स्तम्भित-सी होकर वे कृतिकाएँ अपने सामने स्कन्द को देखते ही पागल-सी हो गयीं और भय से कहने लगीं ॥१८॥

कृतिकाएँ बोलीं—हे वत्स! हम तुम्हारे आश्रित होकर अब क्या करें, कहाँ जायें, तुम हमें छोड़ कर कहाँ जा रहे हो? इस समय तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है ॥१९॥ हम लोगों ने तुम्हें अतिस्नेह से पाला-पोसा है। अपने धर्म के अनुसार तुम हमारे पुत्र हो। यह धर्म नहीं है कि पुत्र इस प्रकार निष्ठुर होकर मातृवर्ग का त्याग करे ॥२०॥ इतना कहकर वे कृतिकाएं पुत्र को अपने वक्षःस्थल (गोद) से लगाकर पुनः मूर्च्छित हो गयीं, क्योंकि पुत्र-वियोग अति भीषण होता है ॥२१॥ हे मुने! अनन्तर कुमार ने उन्हें अध्यात्म सम्बन्धी बातों से आश्वासन दिया और स्वयं कृत्तिकाओं समेत पार्षदों के साथ रथ पर बैठ गये ॥२२॥ हे मुने! (यात्रा के समय)

पूर्णकुम्भं द्विजं वेश्यां शुक्लधान्यानि दर्पणम्। दध्याज्यं मधु लाजांश्च पुष्पं दूर्वाक्षतान्सितान् ॥२३॥
वृषं गजेन्द्रं तुरगं ज्वलदग्निं सुवर्णकम्। पूर्णं च परिपक्वानि फलानि विविधानि च ॥२४॥
पतिपुत्रवतीं नारीं प्रदीपं मणिमुत्तमम्। मुक्तां प्रसूनमालां च सद्योमांसं च चन्दनम् ॥२५॥
ददर्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि पुरो मुने। शृगालं नकुलं कुम्भं शवं वामे शुभावहम् ॥२६॥
राजहंसं मयूरं च खञ्जनं च शकं पिकम्। पारावतं शङ्खचिल्लं चक्रवाकं च मङ्गलम् ॥२७॥
कृष्णसारं च सुरभिं चमरीं श्वेतचामरम्। धेनुं च वत्ससंयुक्तां पताकां दक्षिणे शुभाम् ॥२८॥
नानाप्रकारवाद्यं चाप्यश्रौषीन्मङ्गलध्वनिम् । [1]मनोहरं च संगीतं घण्टाशङ्खध्वनिं तथा ॥२९॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा मङ्गलं स ह्यगमत्तातमन्दिरम् । क्षणेनाऽऽनन्दयुक्तश्च मनोयायिरथेन च ॥३०॥
कुमारः प्राप्य कैलासं न्यग्रोधाक्षयमूलके। क्षणं तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह ॥३१॥
पार्वती मङ्गलं कृत्वा राजमार्गं मनोहरम्। पद्मरागैरिन्द्रनीलैः संस्कृतं परितः पुरम् ॥३२॥
रम्भास्तम्भसमूहैश्च पट्टसूत्रांशुकैस्तथा। श्रीखण्डपल्लवैर्युक्तं पूर्णकुम्भैः सुशोभितम् ॥३३॥
पूर्णकुम्भजलैर्व्याप्तं सिक्तं चन्दनवारिभिः । असंख्यरत्नदीपैश्च मणिराजैर्विराजितम् ॥३४॥
नटनर्तकवेश्यानामुत्सवैः संकुलं सदा। वन्दिभिर्विप्रवर्गैश्च दूर्वापुष्पकरैर्युतम् ॥३५॥
पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिश्च समन्वितम् । लक्ष्मीं सरस्वतीं गङ्गां सावित्रीं तुलसीं रतिम् ॥३६॥

(जल) पूर्ण कलश, ब्राह्मण, वेश्या, शुक्ल धान्य (चावल), दर्पण, दही, घी, मधु, लावा, पुष्प, दूर्वा, श्वेत अक्षत, बैल, गजराज, अश्व, प्रज्वलित अग्नि, सुवर्ण, पूरे पके अनेक प्रकार के फल, पतिपुत्रवती स्त्री, प्रदीप, उत्तम मणि, मोती, पुष्पमाला, तुरन्त का (ताजा) मांस और चन्दन इन मांगलिक वस्तुओं को सामने देखा। इसी प्रकार स्यार (गीदड़), नेवला, घड़ा और शव को वाम भाग में देखा, जो शुभ होता है ॥२३-२६॥ राजहंस, मोर, खञ्जन पक्षी, तोता, कोकिल, कबूतर, शंख, गीध, चकवा, कृष्णसार (मृग), सुरभी और चंवरी गौ, श्वेतचामर, वत्स समेत धेनु एवं पताका को दाहिनी ओर देखा ॥२७-२८॥ मंगल ध्वनि करने वाले अनेक प्रकार के वाद्य, मनोर संगीत, तथा घंटा और शंख की ध्वनि सुनकर एवं मंगल का दर्शन करने के उपरान्त कुमार आनन्द युक्त होते हुए मनोवेग रथ द्वारा अपने पिता के भवन को चले ॥२९-३०॥ कैलाश पर पहुँचकर कृत्तिकाओं और उत्तम पार्षदों के साथ रथ से उतरे और क्षणभर अक्षयवट के नीचे ठहरे ॥३१॥ पार्वती ने मंगल करके मनोहर राजमार्ग को पद्मराग मणि, इन्द्रनीलमणि से चारों ओर से संस्कृत, अनेक कदलीस्तम्भों, रेशमी वस्त्रों और श्रीखण्ड के पल्लवों से युक्त पूर्ण कलशों से सुशोभित और जलपूर्ण कलशों से व्याप्त, चन्दन मिश्रित जल से सिक्त तथा मणिराजों एवं असंख्य दीपकों से विराजमान किया। नगर नटों, नर्तकों तथा वेश्याओं के उत्सवों से व्याप्त हो गया। वहाँ हाथों में दूब तथा फूल लिए बन्दियों एवं ब्राह्मणों का वर्ग, पतिपुत्रवती नारियाँ एवं पतिव्रतायें थीं। तब पार्वती लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, तुलसी, रति, अरुन्धती,

---

१ क. हरिशब्दस्य सं०।

अरुन्धतीमहल्यां च दितिं तारां मनोरमाम्। अदितिं शतरूपां च शचीं संध्यां च रोहिणीम् ॥३७॥
अनसूयां तथा स्वाहां संज्ञां वरुणकामिनीम्। आकूतिं च प्रसूतिं च देवहूतिं च मेनकाम् ॥३८॥
तामेकपाटलामेकपर्णां मैनाककामिनीम्। वसुंधरां च मनसां पुरस्कृत्य समाययौ ॥३९॥
रम्भा तिलोत्तमा मेना घृताची मोहिनी शुभा। उर्वशी रत्नमाला च सुशीला ललिता कला ॥४०॥
कदम्बमाला सुरसा वनमाला च सुन्दरी। एताश्चान्याश्च बहवो विप्रेन्द्राप्सरसां गणाः ॥४१॥
संगीतनर्तनपराः सस्मिता वेषसंयुताः। करतालकराः सर्वा जग्मुरानन्दपूर्वकम् ॥४२॥
देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः किन्नरास्तथा। सर्वे ययुः प्रमुदिताः कुमारस्यानुमज्जने ॥४३॥
नानाप्रकारवाद्यैश्च रुद्रैर्वा पार्षदैः सह। भैरवैः क्षेत्रपालैश्च ययौ सार्धं महेश्वरः ॥४४॥
अथ शक्तिधरो हृष्टो दृष्ट्वाऽऽरात्पार्वतीं तदा। अवरुह्य रथात्तूर्णं शिरसा प्रणनाम ह ॥४५॥
तं पद्माप्रमुखं देवीगणं च मुनिकामिनीः। शिवं च परया भक्त्या सर्वान्संभाष्य यत्नतः ॥४६॥
कार्तिकेयं शिवा दृष्ट्वा क्रोडे कृत्वा चुचुम्ब च। शंकरश्च सुराः शैला देव्यो वै शैलयोषितः ॥४७॥
पार्वतीप्रमुखा देव्यस्तथा देवश्च शंकरः। शैलाश्च मुनयः सर्वे ददुस्तस्मै शुभाशिषः ॥४८॥
कुमारः सगणैः सार्धमागत्य च शिवालयम्। ददर्श तं सभामध्ये विष्णुं क्षीरोदशायिनम् ॥४९॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। धर्मब्रह्मेन्द्रचन्द्रार्कवह्निवाय्वादिभिर्युतम् ॥५०॥

अहल्या, दिति, सुन्दरी तारा, अदिति, शतरूपा, इन्द्राणी, सन्ध्या, रोहिणी, अनसूया, स्वाहा, संज्ञा, वरुण-स्त्री, आकूति, प्रसूति, देवहूति, मेनका, मैनाक की एक पाटला एवं एकपर्णा स्त्री, वसुन्धरा और मनसा को आगे करके वहाँ आयीं ॥३२-३९॥ हे विप्रेन्द्र ! रम्भा, तिलोत्तमा, मेना, घृताची, शुभमूर्ति मोहिनी, उर्वशी, रत्नमाला, सुशीला, ललिता, कला, कदम्बमाला, सुरसा और सुन्दरी वनमाला तथा अन्य अनेक अप्सराओं के समूह उत्तम वेष बनाए मन्दहास करते हुए नृत्यगान कर रहे थे। सभी लोग हाथ में करताल लिए गाते-बजाते आनन्द पूर्वक जा रहे थे ॥४०-४२॥ सभी देवगण, मुनिवृन्द, पर्वतगण, गन्धर्वसमूह, किन्नरगण अति हर्षित होकर कुमार की अगवानी के लिए जा रहे थे ॥४३॥ विभिन्न प्रकार के वाद्य समेत रुद्रगण, पार्षद, भैरवगण एवं क्षेत्रपालों को साथ लिए शिव जी भी चल पड़े ॥४४॥

अनन्तर शक्तिधर कुमार पार्वती को अपने समीप देखकर अति हर्षित हुए और रथ से शीघ्र उतरकर उन्हें शिर से प्रणाम किया तथा पद्मा (लक्ष्मी) आदि देवियों, मुनि की पत्नियों एवं शिव को पराभक्ति से प्रणाम करके संभाषण किया ॥४५-४६॥ पार्वती ने कार्तिकेय को देखकर उन्हें गोद में ले लिया और स्नेहवश उनका चुम्बन करने लगीं। उस समय शंकर, देवगण, पर्वतगण, देवियों, पर्वतपत्नियों पार्वती प्रमुख देवी-वृन्द, देव, शैलगण एवं मुनियों ने कुमार को शुभाशीर्वाद दिया ॥४७-४८॥ पश्चात् गणोंके साथ कुमार शिवालय में आये और सभा के मध्य क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु को उन्होंने देखा, जो रत्नसिंहासन पर सुखासीन, रत्नों के भूषणों से भूषित, धर्म, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु आदि से आवृत, मुसकराते हुए,

ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्[1] । स्तुतं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैः सेवितं श्वेतचामरैः ॥५१॥
तं दृष्ट्वा जगतां नाथं भक्तिनम्रात्मकंधरः । पुलकान्वितसर्वाङ्गः शिरसा प्रणनाम ह ॥५२॥
विधिं धर्मं च देवांश्च मुनीन्द्रांश्च मुदाऽन्वितान् । प्रणनाम पृथक्तत्र प्राप तेभ्यः शुभाशिषः ॥५३॥
पृथक्संभाष्य सर्वांश्चाप्युवास कनकासने । ददौ धनानि विप्रेभ्यः पार्वत्या सह शंकरः ॥५४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारना० कार्तिकेयागमनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ विष्णुर्जगत्कान्तो हृष्टः कृत्वा शुभेक्षणम् । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास षण्मुखम् ॥१॥
नानाविधानि वाद्यानि कांस्यतालादिकानि च । नानाविधानि यन्त्राणि वादयामास कौतुकात् ॥२॥
वेदमन्त्राभिषिक्तैश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः । सद्रत्नकुम्भशतकैः स्नापयामास तं मुदा ॥३॥
सद्रत्नसारखचितं किरीटं मङ्गलाङ्गदे । अमूल्यरत्नखचितभूषणानि बहूनि च ॥४॥
वह्निशुद्धांशुके दिव्ये क्षीरोदार्णवसंभवम् । कौस्तुभं वनमालां च तस्मै चक्रं ददौ मुदा ॥५॥

प्रसन्नमुख, भक्तों पर कृपा करने वाले, मुनिश्रेष्ठों और देवेन्द्रों से स्तुत तथा श्वेत चामरों से सुशोभित थे ॥४९-५१॥ जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु को देखकर कुमार ने भक्ति से अपना कन्धा झुका लिया और समस्त शरीर में पुलयकायमान होकर उन्हें शिर से प्रणाम किया ॥५२॥ पश्चात् ब्रह्मा, धर्म, देवों और मुनियों को प्रणाम किया और उनसे पृथक्-पृथक् शुभाशीर्वाद प्राप्त किया ॥५३॥ तथा सभी लोगों से पृथक्-पृथक् बात-चीत करके सुवर्ण के सिंहासन पर विराजमान हुए । और शिव-पार्वती ने ब्राह्मणों को धन प्रदान किया ॥५४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में कार्तिकेय-आगमन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १७

कार्तिकेय का सेनापति के पद पर अभिषेक

नारायण बोले—जगत्पति भगवान् विष्णु ने हर्षित होकर शुभ मूहूर्त में छह मुख वाले कार्तिकेय को उत्तम रत्नसिंहासन पर सुखासीन किया ॥१॥ कौतुक वश विभिन्न प्रकार के कांस्यताल आदि वाद्य और अनेक प्रकार के यन्त्र वाद्य बजवाना प्रारम्भ किया ॥२॥ वेदमंत्रों के उच्चारण पूर्वक समस्त तीर्थों के जल भरे उत्तम रत्नों के सैकड़ों कलशों से हर्षपूर्वक उनका अभिषेक (स्नान) कराया ॥३॥ उत्तम रत्नों के सारभाग से खचित किरीट, मंगलमय केयूर और अमूल्य रत्नों के अनेक भूषण, अग्निविशुद्ध दो दिव्य वस्त्र, क्षीरसागर से उत्पन्न कौस्तुभमणि,

---

१ क. ०हविग्रहम् ।

ब्रह्मा ददौ यज्ञसूत्रं वेदा वै वेदमातरम्। संध्यामन्त्रं कृष्णमन्त्रं स्तोत्रं च कवचं हरेः॥६॥
कमण्डलुं च ब्रह्मास्त्रं विद्यां वै वैरिमर्दिनीम्। धर्मो धर्ममतिं दिव्यां सर्वजीवे दयां ददौ॥७॥
परं मृत्युंजयं ज्ञानं सर्वशास्त्रावबोधनम्। शश्वत्सुखप्रदं तत्त्वज्ञानं च सुमनोहरम्॥८॥
योगतत्त्वं सिद्धितत्त्वं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्। शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं धनुः॥९॥
संहारास्त्रविनिक्षेपं तत्संहारं ददौ शिवः। श्वेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ तस्मै जलेश्वरः॥१०॥
गजेन्द्रं च हयेन्द्रं च सुधाकुम्भं सुधानिधिः। मनोयायिरथं सूर्यः संनाहं च मनोरमम्॥११॥
यमदण्डं यमश्चैव महाशक्तिं हुताशनः। नानाशस्त्राण्युपायानि सर्वे देवा ददुर्मुदा॥१२॥
कामशास्त्रं कामदेवो ददौ तस्मै मुदाऽन्वितः। क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टे रत्ननूपुरे॥१३॥
सावित्री सिद्धिविद्यां च सर्वास्ताः कौतुकाद्ददुः। हिमालयो मयूरं च वाहनार्थं च मूकुटम्॥१४॥
लक्ष्मीश्च परमैश्वर्यं भारती हारमुत्तमम्। पार्वती सस्मिता हृष्टा परमानन्दमानसा॥१५॥
महाविद्यां सुशीलां च विद्यां मेधां दयां स्मृतिम्। बुद्धिं सुनिर्मलां शान्तिं तुष्टिं पुष्टिं क्षमां धृतिम्॥१६॥
सुदृढां च हरौ भक्तिं हरिदास्यं ददौ मुदा। प्रजापतिर्देवसेनां रत्नभूषणभूषिताम्॥१७॥
सुविनीतां सुशीलां च सुन्दरीं सुमनोहराम्। ददौ तस्मै वेदमन्त्रैर्विवाहविधिना स्वयम्॥१८॥
यां वदन्ति महाषष्ठीं पण्डिताः शिशुपालिकाम्। अभिषिच्य कुमारं च सर्वे देवा ययुर्गृहम्॥१९॥

वनमाला और चक्र प्रदान किये॥४-५॥ ब्रह्मा ने यज्ञोपवीत, वेदों ने वेदमाता गायत्री, सन्ध्यामन्त्र, कृष्णमन्त्र, भगवान् का स्तोत्र, कवच, कमण्डलु, ब्रह्मास्त्र तथा वैरिनाशिनी विद्या, एवं धर्म ने दिव्य धर्मबुद्धि और समस्त जीवों के हितार्थ दया प्रदान की॥६-७॥ शिव ने उत्तम मृत्युञ्जय ज्ञान, सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान, निरन्तर सुखप्रद एवं मनोहर तत्त्वज्ञान, योगतत्त्व, सिद्धितत्त्व, अति दुर्लभ ब्रह्मज्ञान, शूल, पिनाक (धनुष), परशु (फरसा) शक्ति, पाशुपत धनुष, संहार अस्त्र का चलाना और उसका संहार करना, जलाधीश वरुण ने श्वेतच्छत्र और रत्न की माला, गजराज और उत्तम अश्व दिये। सुधानिधि चन्द्रमा ने अमृत-कलश, सूर्य ने मन की भाँति चलने वाला रथ और मनोरम सन्नाह (कवच). यम ने यमदण्ड, अग्नि ने महाशक्ति तथा देवों ने अनेक भाँति के शस्त्र उपहार प्रदान किये॥८-१२॥ कामदेव ने प्रसन्न होकर कामशास्त्र, तथा क्षीरसागर ने अमूल्य रत्न समेत विशिष्ट रत्नों के नूपुर अर्पित किये॥१३॥ सवित्री ने सिद्धिविद्या और अन्य देवियों ने कौतुकवश सभी विद्यायें दीं। हिमालय ने सवारी के लिये मयूर तथा मुकुट दिये। लक्ष्मी ने परम ऐश्यर्य और सरस्वती ने उत्तम हार दिया। पार्वती ने हर्षित होकर मन्द मुसुकान करती हुई परमानन्दभाव से महाविद्या, सुशोला, विद्या, मेधा, दया, स्मृति, अतिनिर्मल बुद्धि, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, धृति तथा हरिदास्य समेत भगवान् की सुदृढ़ भक्ति दी। प्रजापति ने रत्नों के भूषणों से भूषित, अति विनीत, सुशील एवं अति मनोहारिणी सुन्दरी देवसेना को वेदमन्त्रों के उच्चारण और विवाह विधि से उन्हें स्वयं प्रदान किया, जिसे पण्डितगण बच्चों को पालने वाली महाषष्ठी कहते हैं। इस प्रकार कुमार का अभिषेक करके सभी देवों ने अपने-अपने गृहों को प्रस्थान किया॥१४-१९॥

मुनयश्चैव गन्धर्वाः प्रणम्य जगदीश्वरान् । नारायणं च ब्रह्माणं धर्मं तुष्टाव शंकरः ॥२०॥
प्रणनाम हरिं तात धर्ममालिङ्ग्य च नारद । प्रीत्या ययौ च शैलेन्द्रः सगणः शंकरार्चितः ॥२१॥
ये ये तत्राऽऽगताः सर्वे ययुरानन्दपूर्वकम् । परमानन्दसंयुक्तो देव्या सह महेश्वरः ॥२२॥
कालान्तरे च तान्सर्वान्पुनरानीय शंकरः । पुष्टिं ददौ विवाहेन गणेशाय महात्मने ॥२३॥
सुताभ्यां सगणैः सार्धं पार्वती हृष्टमानसा । सिषेवे स्वामिनः पादपद्मं सा सर्वकामदम् ॥२४॥
इत्येवं कथितं सर्वं कुमारस्याभिषेचनम् । विवाहः पूजनं तस्य गणेशस्य विवाहकम् ॥२५॥
पार्वतीपुत्रलाभश्च देवानां च समागमः । का ते मनसि वाञ्छाऽस्ति किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० कुमारगणेशविवाहकुमाराभिषेक-कथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । पृच्छामि त्वामहं किंचिदतिसंदेहवान्यतः ॥१॥
सुतस्य त्रिदशेशस्य शंकरस्य महात्मनः । विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नमीश्वरस्य कथं प्रभो ॥२॥
परिपूर्णतमः श्रीमान्परमात्मा परात्परः । गोलोकनाथः स्वांशेन पार्वतीतनयः स्वयम् ॥३॥

हे तात नारद, शंकर ने नारायण, ब्रह्मा और धर्म की स्तुति तथा धर्म का आलिंगन करके भगवान् को प्रणाम किया। अनन्तर शंकर से सम्मानित होकर शैलराज हिमालय अपने गणों समेत सप्रेम चले गये। इस प्रकार जो लोग जहाँ से आये थे, आनन्द पूर्वक वहाँ चले गये। पार्वती समेत शिव भी परमानन्दमग्न हुए। कुछ काल के उपरान्त शिव ने पुनः उन लोगों को निमन्त्रित कर सबके समक्ष महात्मा गणेश का पुष्टि के साथ विवाह संस्कार सम्पन्न कराकर वह उन्हें सौंप दी ॥२०-२३॥ तदनन्तर पार्वती अपने दोनों पुत्रों और गणों समेत अति प्रसन्न मन से स्वामी शंकर के चरणकमल की सेवा करने लगीं, जो समस्त कामनाओं का दायक है ॥२४॥ इस भाँति मैंने कुमार का अभिषेक, विवाह एवं पूजन और गणेश का विवाह पार्वती का पुत्र-लाभ और देवों का समागम तुम्हें बता दिया। अब तुम्हारे मन में क्या इच्छा है और पुनः क्या सुनना चाहते हो ॥२५-२६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में कुमार-गणेश-विवाह और कुमार का अभिषेक कथन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

अध्याय १८

शिव को कश्यप का शाप

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे वेद-वेदांगों के पारगामी विद्वान्! मैं आप से कुछ पूछना चाहता हूँ क्योंकि मुझे सन्देह हो गया है ॥१॥ हे प्रभो! देवाधीश्वर भगवान् शंकर के पुत्र विघ्ननाशक (गणेश) को विघ्न कैसे हुआ, वे तो ईश्वर हैं और परिपूर्णतम श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण, जो परमात्मा, परात्पर और गोलोक के नाथ हैं, अपने अंश से स्वयं पार्वती के पुत्र हुए हैं ॥२-३॥ हे विभो! यह आश्चर्य है कि ग्रह की

अहो भगवतस्तस्य मस्तकच्छेदनं विभो । ग्रहदृष्ट्या ग्रहेशस्य कथं मे वक्तुमर्हसि ॥४॥

नारायण उवाच

सावधानं शृणु ब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम् । विघ्नेशस्य बभूवेदं विघ्नं येन च नारद ॥५॥
एकदा शंकरः सूर्यं जघान परमक्रुधा । सुमालिमालिहन्तारं शूलेन भक्तवत्सलः ॥६॥
श्रीसूर्योऽमोघशूलेनाशनितुल्येन तेजसा । जहौ स चेतनां सद्यो रथाच्च निपपात ह ॥७॥
ददर्श कश्यपः पुत्रं मृतमुत्तानलोचनम् । कृत्वा वक्षसि तं शोकाद्विललाप भृशं मुहुः ॥८॥
हाहाकारं सुराश्चक्रुर्विलेपुर्भयकातराः । अन्धीभूतं जगत्सर्वं बभूव तमसाऽऽवृतम् ॥९॥
निष्प्रभं तनयं दृष्ट्वा चाशपत्कश्यपः शिवम् । तपस्वी ब्रह्मणः पौत्रः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥१०॥
मत्पुत्रस्य यथा वक्षश्छिन्नं शूलेन तेऽद्य वै । त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नं भविष्यति न संशयः ॥११॥
शिवश्च गलितक्रोधः क्षणेनैवाऽऽशुतोषकः । ब्रह्मज्ञानेन तं सूर्यं जीवयामास तत्क्षणात् ॥१२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशश्च त्रिगुणात्मकः । सूर्यश्च चेतनां प्राप्य समत्तस्थौ पितुः पुरः ॥१३॥
ननाम पितरं भक्त्या शंकरं भक्तवत्सलम् । विज्ञाय शंभोः शापं च कश्यपं स चुकोप ह ॥१४॥
विषयान्नैव जग्राह कोपेनैवमुवाच ह । विषयांश्च परित्यज्य भजे श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥१५॥
सर्वं तुच्छमनित्यं च नश्वरं चेश्वरं विना । विहाय मङ्गलं सत्यं विद्वान्नेच्छेदमङ्गलम् ॥१६॥

दृष्टि (देखने) से ग्रहाधीश्वर भगवान् का भी मस्तकच्छेद हो जाये, यह कैसे हुआ ? मुझे बताने की कृपा करें ॥४॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन् ! हे नारद ! मैं तुम्हें यह पुराना इतिहास बता रहा हूँ कि विघ्नेश्वर (गणेश) को विघ्न कैसे हुआ, सावधान होकर सुनो ॥५॥

एक बार शिव ने परम क्रोध के कारण त्रिशूल से सूर्य को मार डाला, जो सुमाली और माली राक्षसों को मार रहे थे ॥६॥ वज्र के समान तेजस्वी एवं अमोघ (अव्यर्थ) उस शूल के प्रहार से मूर्च्छित होकर सूर्यदेव चेतनाहीन हो गये और रथ से गिर पड़े ॥७॥ अनन्तर कश्यप ने अपने पुत्र (सूर्य) को, जो ऊपर आँख किये मृतक हो गये थे, देखकर अपनी गोद में उठा लिया और शोक से बार-बार विलाप करने लगे ॥८॥ देवों ने हाहाकार किया तथा भयभीत होकर विलाप भी किया। उस समय सारा जगत् तिमिराच्छन्न होने के नाते अन्धकारमय हो गया था ॥९॥ तपस्वी ब्रह्मा के पौत्र और ब्रह्मतेज से प्रदीप्त—कश्यप ने अपने पुत्र को प्रभाहीन देखकर शिव को शाप दिया कि आज तुमने शूल द्वारा जिस प्रकार मेरे पुत्र का वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न किया है, ऐसे ही तुम्हारे पुत्र का भी शिर छिन्न-भिन्न हो जायगा, इसमें संशय नहीं ॥१०-११॥ क्षणमात्र में क्रोध निकल जाने पर आशुतोष भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और ब्रह्मज्ञान द्वारा उसी समय सूर्य को जीवित कर दिया ॥१२॥ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर के अंशभूत सूर्य, जो त्रिगुण स्वरूप हैं, चेतना प्राप्त होने पर पिता के सामने उठ कर बैठ गये ॥१३॥ सूर्य ने पिता और भक्तवत्सल शंकर को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और शिव का शाप जानकर अपने पिता पर क्रोध प्रकट किया ॥१४॥ विषयों का ग्रहण नहीं किया और क्रोध से इस प्रकार कहा कि मैं विषयों को त्यागकर भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करूँगा क्योंकि बिना ईश्वर के सब कुछ तुच्छ, अनित्य और नश्वर है। विद्वान् लोग मंगल सत्य का त्याग कर अमंगल नहीं चाहते ॥१५-१६॥

देवैश्च प्रेरितो ब्रह्मा समागत्य ससंभ्रमः । बोधयित्वा रविं तत्र युयोज विषयेष्वजः ॥१७॥
तस्मै दत्वाऽऽशिषः शंभुर्ब्रह्मा च स्वालयं मुदा । जगाम कश्यपश्चैव स्वराशिं रविरेव च ॥१८॥
अथ माली सुमाली च व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । श्वित्रौ गलितसर्वाङ्गौ शक्तिहीनौ हतप्रभौ ॥१९॥
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा युवां च भजतां रविम् । सूर्यकोपेन गलितौ युवामेवं हतप्रभौ ॥२०॥
सूर्यस्य कवचं स्तोत्रं सर्वं पूजाविधिं विधिः । जगाम कथयित्वा तौ ब्रह्मलोकं सनातनः ॥२१॥
ततस्तौ पुष्करं गत्वा सिषेवाते रविं मुने । स्नात्वा त्रिकालं भक्त्या च जपन्तौ मन्त्रमुत्तमम् ॥२२॥
ततः सूर्याद्वरं प्राप्य निजरूपौ बभूवतुः । इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० विघ्नेशविघ्नकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

किं स्तोत्रं कवचं नाथ ब्रह्मणा लोकसाक्षिणा । दानवाभ्यां पुरा दत्तं सूर्यस्य परमात्मनः ॥१॥
किं वा पूजाविधानं वा कं मन्त्रं व्याधिनाशनम् । सर्वं चास्य महाभाग तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥२॥

इसी बीच देवों से प्रेरित होकर ब्रह्मा सहसा वहाँ आ गये और सूर्य को भलीभाँति उद्बुद्ध करके उन्हें पुनः विषयों में संलग्न किया ॥१७॥ पश्चात् शम्भु और ब्रह्मा सूर्य को शुभाशीर्वाद प्रदान कर अपने-अपने लोक में चले गये, कश्यप भी चले गये और सूर्य ने भी अपनी राशि पर प्रस्थान किया ॥१८॥ अनन्तर माली, सुमाली दोनों व्याधिपीड़ित हुए। उनको श्वेतकुष्ठ तथा सर्वांग में गलित कुष्ठ हो गया तथा वे शक्तिहीन होकर कान्तिहीन हो गये ॥१९॥ उन्हें ब्रह्मा ने स्वयं कहा—'तुम दोनों सूर्य की आराधना करो, सूर्य के कोप के कारण तुम दोनों गलित तथा हतप्रभ हुए हो ॥२०॥ पश्चात् सनातन ब्रह्मा ने सूर्य का कवच, स्तोत्र एवं पूजा विधान उन्हें बताकर अपने लोक को प्रस्थान किया और वे दोनों पुष्कर जाकर तीनों काल स्नान और भक्तिपूर्वक उत्तम मंत्र के जप के द्वारा सूर्य की आराधना करने लगे। अनन्तर सूर्य से वरदान प्राप्त कर उन दोनों ने पुनः अपना रूप प्राप्त किया। इस भाँति मैंने सब कुछ सुना दिया है और अब क्या सुनना चाहते हो ॥२१-२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में विघ्नेश का विघ्न-कथन नामक अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

अध्याय १९

सूर्य का पूजन और स्तोत्र

नारद बोले—हे नाथ ! पूर्वकाल में लोकसाक्षी ब्रह्मा ने दोनों दानवों को परमात्मा सूर्य का कौन स्तोत्र एवं कवच प्रदान किया था ॥१॥ हे महाभाग ! उनके पूजा का विधान क्या है, रोगनाशक मंत्र कौन है, यह सब कुछ मुझे बताने की कृपा करें ॥२॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान्करुणानिधिः । स्तोत्रं च कवचं मन्त्रमूचे तत्पूजनक्रमम् ॥३॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि सूर्यपूजाविधेः क्रमम् । स्तोत्रं च कवचं सर्वं पापव्याधिविमोचकम् ॥४॥
सुमालिमालिनौ दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । विधिं सस्मरतुः स्तोतुं शिवमन्त्रप्रदायकम् ॥५॥
ब्रह्मा गत्वा च वैकुण्ठं पप्रच्छ कमलापतिम् । शिवं तत्रैव संपश्यन्वसन्तं हरिसंनिधौ ॥६॥

ब्रह्मोवाच

सुमालिमालिनौ दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । क उपायो वद हरे तयोर्व्याधिविनाशने ॥७॥

विष्णुरुवाच

कृत्वा सूर्यस्य सेवां च पुष्करे पूर्णवत्सरम् । व्याधिहन्तुर्मदंशस्य तौ च मुक्तौ भविष्यतः ॥८॥

शंकर उवाच

सूर्यस्तोत्रं च कवचं मन्त्रं कल्पतरुं परम् । देहि ताभ्यां जगत्कान्त व्याधिहन्तुर्महात्मनः ॥९॥
आवां संपत्प्रदातारौ सर्वदाता हरिः स्वयम् । व्याधिहन्ता दिनकरो यस्य यो विषयो विधे ॥१०॥

सूत बोले—करुणानिधान भगवान् ने नारद की बातें सुनकर सूर्य का स्तोत्र, कवच, मन्त्र और उनकी पूजा का क्रम बताना आरम्भ किया ॥३॥

नारायण बोले—हे नारद ! मैं तुम्हें सूर्य की पूजा का विधान, स्तोत्र और समस्त पापों से मुक्त करने वाला कवच बता रहा हूँ, सुनो ॥४॥

जब सुमाली और माली नामक दैत्य रोग-पीड़ित हो गये तब उन लोगों ने स्तुति करने के हेतु शिवमन्त्र-प्रदाता ब्रह्मा का स्मरण किया ॥५॥ अनन्तर ब्रह्मा ने वैकुण्ठ जाकर, वहीं विष्णु के समीप उपस्थित शिव को देखते हुए, कमलापति विष्णु से पूछा ॥६॥

ब्रह्मा बोले—हे हरे ! सुमाली और माली नामक दैत्य व्याधि-पीड़ित हो गये हैं, उनके रोगमुक्त होने के लिए कोई उपाय बताने की कृपा करें ॥७॥

विष्णु बोले—पुष्कर क्षेत्र में पूरे वर्ष तक सूर्य की, जो मेरे अंश से उत्पन्न एवं व्याधिनाशक हैं, सेवा करने से वे रोगमुक्त हो जायँगे ॥८॥

शंकर बोले—हे जगत्कान्त ! व्याधिनाश करने वाले महात्मा सूर्य का स्तोत्र, कवच और कल्पतरु जैसा श्रेष्ठ मन्त्र उन्हें प्रदान करने की कृपा करें ॥९॥ हे विधे ! हम दोनों केवल सम्पत्ति प्रदान करते हैं किन्तु सब कुछ प्रदान करने वाले स्वयं हरि हैं और व्याधि का नाश केवल सूर्य करते हैं क्योंकि जिसका जो विषय है, उसे वह सम्पन्न करता

तयोरनुमतिं प्राप्य ययौ दैत्यगृहं विधिः । तदा प्रणम्य तं दृष्ट्वा तस्मै ददतुरासनम् ॥११॥
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा रोगग्रस्तौ दयानिधिः । स्तब्धावाहाररहितौ पूयदुर्गन्धसंयुतौ ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

गृहीत्वा कवचं स्तोत्रं मन्त्रं पूजाविधिक्रमम् । गत्वा हि पुष्करं वत्सौ भजथः प्रणतौ रविम् ॥१३॥

तावूचतुः

भजावः केन विधिना केन मन्त्रेण वा विधे । किं स्तोत्रं कवचं किं वा तदावाभ्यां वदाधुना ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

कृत्वा त्रिकालं स्नानं च मन्त्रेणानेन भास्करम् । संसेव्य भास्करं भक्त्या नीरुजौ च भविष्यथः ॥१५॥
ॐ ह्रीं नमो भगवते सूर्याय परमात्मने । स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण सावधानं दिवाकरम् ॥१६॥
संपूज्य दत्त्वा भक्त्या वै चोपहारांस्तु षोडश । एवं संवत्सरं यावद्ध्रुवं मुक्तौ भविष्यथः ॥१७॥
अपूर्वं कवचं तस्य युवाभ्यां प्रददाम्यहम् । यद्दत्तं गुरुणा पूर्वमिन्द्राय प्रीतिपूर्वकम् ॥१८॥
तत्सहस्रभगाङ्गाय शापेन गौतमस्य च । अहल्याहरणेनैव पापयुक्ताय संकटे ॥१९॥

है॥१०॥ अनन्तर उन दोनों की अनुमति प्राप्त कर ब्रह्मा दैत्यों के घर गये और दैत्यों ने उन्हें देखते ही प्रणाम कर आसन प्रदान किया॥११॥ दयानिधि ब्रह्मा ने स्वयं उन रोग-पीड़ितों से, जो स्तब्ध, आहार-रहित और पीब की दुर्गन्ध से युक्त थे, कहा॥१२॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! यह कवच, स्तोत्र, मंत्र और पूजाविधान का क्रम ग्रहण कर तुम लोग पुष्कर क्षेत्र चले जाओ और वहाँ सूर्य का नमस्कार पूर्वक भजन करो॥१३॥

वे दोनों बोले—हे विधे! किस विधान और किस मंत्र द्वारा हम उनकी सेवा करेंगे और उनका स्तोत्र क्या है? कवच क्या है? सम्प्रति बताने की कृपा करें॥१४॥

ब्रह्मा बोले—वहाँ जाकर तीनों काल में स्नान करके इस मंत्र द्वारा भक्तिपूर्वक भास्कर की सेवा करने से तुम रोगमुक्त हो जाओगे॥१५॥ 'ओं ह्रीं भगवते सूर्याय परमात्मने स्वाहा' इस मंत्र से सावधान होकर भक्तिपूर्वक दिवाकर का षोडशोपचार पूजन करो। इस भाँति पूरे वर्ष तक उनकी सेवा करने से निश्चित ही रोगमुक्त हो जाओगे॥१६-१७॥ मैं तुम्हें उनका अपूर्व कवच प्रदान कर रहा हूँ, जिसे पूर्व काल में बृहस्पति ने बड़े प्रेम से इन्द्र को प्रदान किया था॥१८॥ जिस समय गौतम के शाप द्वारा इन्द्र के सहस्र भग हो गये थे और जो (इन्द्र) अहल्या के अपहरण द्वारा पापयुक्त एवं संकटग्रस्त हो गये थे, उनसे बृहस्पति ने कहा॥१९॥

बृहस्पतिरुवाच

इन्द्र शृणु प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम्। यद्धृत्वा मुनयः पूता जीवन्मुक्ताश्च भारते ॥२०॥
कवचं बिभ्रतो व्याधिर्न भियाऽऽयाति संनिधिम्। यथा दृष्ट्वा वैनतेयं पलायन्ते भुजंगमाः ॥२१॥
शुद्धाय गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत्। खलाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥२२॥
जगद्विलक्षणस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो दिनकरः स्वयम् ॥२३॥
व्याधिप्रणाशे सौन्दर्ये विनियोगः प्रकीर्तितः। सद्यो रोगहरं सारं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४॥
ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा मे पातु मस्तकम्। अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कपालं मे सदाऽवतु ॥२५॥
ॐ ह्रीं[1] ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा मे पातु नासिकाम्। चक्षुर्मे पातु सूर्यश्च तारकं च विकर्तनः ॥२६॥
भास्करो मेऽधरं पातु दन्तान्दिनकरः सदा। प्रचण्डः पातु गण्डं मे मार्तण्डः कर्णमेव च ॥
मिहिरश्च सदा स्कन्धे जङ्घे पूषा सदाऽवतु ॥२७॥
वक्षः पातु रविः शश्वन्नाभिं सूर्यः स्वयं सदा। कङ्कालं मे सदा पातु सर्वदेवनमस्कृतः ॥२८॥
कर्णौ पातु सदा ब्रध्नः पातु पादौ प्रभाकरः। विभाकरो मे सर्वाङ्गं पातु संततमीश्वरः ॥२९॥
इति ते कथितं वत्स कवचं सुमनोहरम्। जगद्विलक्षणं नाम त्रिजगत्सु सुदुर्लभम् ॥३०॥
पुरा दत्तं च मनवे पुलस्त्येन तु पुष्करे। मया दत्तं च तुभ्यं तद्यस्मै कस्मै न देहि भोः ॥३१॥

बृहस्पति बोले—हे इन्द्र! मैं तुम्हें परम अद्भुत कवच बता रहा हूँ, जिसे धारण कर मुनिगण भारत में जीवन्मुक्त हो गये हैं ॥२०॥ गरुड़ को देखकर जिस प्रकार सर्पगण पलायन कर जाते हैं उसी भाँति कवचधारी के समीप रोग भयभीत होकर नहीं जाता है ॥२१॥ इसलिए शुद्ध और गुरुभक्त शिष्य को इसे बताना चाहिए, क्योंकि यह खल और पर-शिष्य को देने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥२२॥ इस जगद्विलक्षण कवच का प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, दिनकर देवता और रोगनाशपूर्वक सौन्दर्य प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है ॥२३॥ वह तुरन्त रोग का हरण करने वाला, सारभाग और समस्त पापों का नाशक है। ओं क्लीं ह्रीं श्रीं श्री सूर्याय स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे। अष्टादश अक्षर का मंत्र मेरे कपाल की सदा रक्षा करे। ओं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा' मेरी नासिका की रक्षा करे, सूर्य मेरे नेत्र की रक्षा करें, विकर्त्तन तारका की रक्षा करें, भास्कर मेरे अधर की रक्षा करें, दिनकर सदा दाँतों की रक्षा करें प्रचण्ड मेरे कपोल की रक्षा करें, मार्त्तण्ड कान की रक्षा करें, मिहिर दोनों कंधे, और पूषा जंघे की रक्षा करें ॥२४-२७॥ रवि वक्षःस्थल की रक्षा करें, स्वयं सूर्य निरन्तर नाभि की रक्षा करें, सर्वदेव-नमस्कृत सदा मेरी ठठरी की रक्षा करें, ब्रध्न सदा कानों की रक्षा करें, प्रभाकर चरणों की रक्षा करें और ईश्वर विभाकर मेरे सर्वांग की निरन्तर रक्षा करें ॥२८-२९॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने जगद्विलक्षण नामक कवच, जो अति मनोहर और तीनों लोकों में अति दुर्लभ है, तुम्हें बता दिया ॥३०॥ पूर्वकाल में पुष्कर क्षेत्र में पुलस्त्य ने यही मनु को दिया था और मैं तुम्हें दे रहा हूँ, अतः इसे जिस-किसी को मत देना ॥३१॥

---

१ क. ह्रीं क्लीं श्रीं सू०।

व्याधितो मुच्यसे त्वं च कवचस्य प्रसादतः। भवानरोगी श्रीमांश्च भविष्यति न संशयः ॥३२॥
लक्षवर्षहविष्येण यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते नूनं कवचस्यास्य धारणात् ॥३३॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो मूढो भास्करं यजेत्। दशलक्षप्रजप्तोऽपि मन्त्रसिद्धिर्न जायते ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

धृत्वेदं कवचं वत्सौ कृत्वा च स्तवनं रवेः। युवां व्याधिविनिर्मुक्तौ निश्चितं तु भविष्यथः ॥३५॥
स्तवनं सामवेदोक्तं सूर्यस्य व्याधिमोचनम्। सर्वपापहरं सारं धनारोग्यकरं परम् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

तं ब्रह्म परमं धाम ज्योतीरूपं सनातनम्। त्वामहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम् ॥३७॥
त्रैलोक्यलोचनं लोकनाथं पापविमोचनम्। तपसां फलदातारं दुःखदं पापिनां सदा ॥३८॥
कर्मानुरूपफलदं कर्मबीजं दयानिधिम्। कर्मरूपं क्रियारूपमरूपं कर्मबीजकम् ॥३९॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशं च त्रिगुणात्मकम्। व्याधिदं व्याधिहन्तारं शोकमोहभयापहम् ॥
सुखदं मोक्षदं सारं भक्तिदं सर्वकामदम् ॥४०॥
सर्वेश्वरं सर्वरूपं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्। प्रत्यक्षं सर्वलोकानामप्रत्यक्षं मनोहरम् ॥४१॥
शश्वद्रसहरं पश्चाद्रसदं सर्वसिद्धिदम्। सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं सिद्धानां परमं गुरुम् ॥४२॥
स्तवराजमिमं प्रोक्तं गुह्याद्गुह्यतरं परम्। त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं व्याधिभ्यः स प्रमुच्यते ॥४३॥

इस कवच के प्रसाद से तुम रोगमुक्त और श्रीमान् हो जाओगे, इसमें संशय नहीं ॥३२॥ एक लाख वर्ष तक हविष्य भक्षण करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह इस कवच के धारण मात्र से निश्चय प्राप्त होता है ॥३३॥ जो मूर्ख इस कवच को बिना जाने भास्कर की पूजा-आराधना करता है, दश लाख जप करने पर भी उसकी मंत्रसिद्धि नहीं होती है ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! इस कवच को धारण कर सूर्य की स्तुति करने से तुम लोग निश्चित रोगमुक्त हो जाओगे। सामवेदानुसार सूर्य का व्याधिमोचन नामक स्तोत्र है, जो समस्त पापहारी, समस्त का सारभाग, एवं धन-आरोग्यकारी है ॥३५-३६॥

ब्रह्मा बोले—उस परमधाम ब्रह्म की, जो ज्योतिरूप, सनातन और भक्तों पर अनुग्रह करने वाला है, स्तुति करना चाहता हूँ ॥३७॥ वे तीनों लोकों के नेत्र, लोकपति, पाप से मुक्त करने वाले, तप के फल देने वाले और पापियों को सदा दुःख देने वाले हैं ॥३८॥ कर्मों के अनुरूप फल प्रदायक, कर्म के बीज, दया-निधान, कर्मरूप, क्रियारूप, अरूप, कर्मों के बीज ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर के अंश, त्रिगुणस्वरूप, व्याधिप्रद, व्याधिहन्ता, शोक, मोह तथा भय के नाशक, सुखदायक, मोक्षप्रद, सारभाग, भक्तिप्रद, समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाले सर्वेश्वर सर्वरूप, समस्त कर्मों के साक्षी, सभी लोगों के लिए प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, मनोहर, निरन्तर रसहरण करने वाले, पश्चात् रसप्रदायक, सम्पूर्णसिद्धिदाता, सिद्धिस्वरूप, सिद्धेश एवं सिद्धों के परम गुरु हैं ॥३९-४२॥ मैंने गुह्य से गुह्यतर यह स्तवराज तुम्हें बता दिया। तीनों संध्याओं में जो नित्य इसका पाठ करेगा वह व्याधियों से मुक्त रहेगा ॥४३॥

आन्ध्यं कुष्ठं च दारिद्र्यं रोगः शोको भयं कलिः। तस्य नश्यति विश्वेश श्रीसूर्यकृपया ध्रुवम् ॥४४॥
महाकुष्ठी च गलितो चक्षुर्हीनो महाव्रणी। यक्ष्मग्रस्तो महाशूली नानाव्याधियुतोऽपि वा ॥४५॥
मासं कृत्वा हविष्यान्नं श्रुत्वाऽतो मुच्यते ध्रुवम्। स्नानं च सर्वतीर्थानां लभते नात्र संशयः ॥४६॥
पुष्करं गच्छतं शीघ्रं भास्करं भजतं सुतौ। इत्येवमुक्त्वा स विधिर्जगाम स्वालयं मुदा ॥४७॥
तौ निषेव्य दिनेशं तं नीरुजौ संबभूवतुः। इत्येवं कथितं वत्स किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४८॥
सर्वविघ्नहरं सारं विघ्नेशं विघ्ननाशनम्। स्तोत्रेणानेन तं स्तुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥४९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० विघ्नकारणकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

हरेरंशसमुत्पन्नो हरितुल्यो भवान्धिया। तेजसा विक्रमेणैव मत्प्रश्नं श्रोतुमर्हसि ॥१॥
विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नं श्रुतं तत्परमाद्भुतम्। तद्विघ्नकारणं चैव विश्वकारणवक्त्रतः ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि स्वात्मसंदेहभञ्जनम्। त्रैलोक्यनाथतनये गजास्ययोजनार्थकम् ॥३॥

उसका अन्धापन, कुष्ठ, दरिद्रता, रोग, शोक, भय और कलि आदि विश्वेश्वर (श्री सूर्य) की कृपा से निश्चित नष्ट हो जाएँगे ॥४४॥ महाकुष्ठी, गलित रोगी, अन्धा, महाव्रणी (घाव वाले), यक्ष्मा (तपेदिक) से पीड़ित, महाशूल का रोगी तथा अनेक भाँति के रोगों से युक्त भी एक मास तक हविष्यान्न-भक्षण और इसके श्रवण करने से निश्चित रोग-मुक्त हो जाएगा और समस्त तीर्थों के स्नान का फल भी उसे प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं ॥४५-४६॥ इसलिए हे पुत्रो! तुमलोग शीघ्र पुष्कर को जाओ और भास्कर की आराधना करो। इतना कहकर ब्रह्मा सुप्रसन्न मन से अपने लोक को चले गये ॥४७॥ हे वत्स! इस प्रकार वे दोनों दिनेश्वर सूर्य की आराधना करके नीरोग हो गये, यह कथा मैंने तुम्हें सुना दी, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥४८॥ समस्त विघ्नों के नाशक, सार भाग, विघ्नेश तथा विघ्ननाशक उन सूर्य की इस स्तोत्र द्वारा स्तुति करने पर अवश्य रोगमुक्त हो जाता है ॥४९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में विघ्नकारण-कथन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

अध्याय २०

गणेश को गजमुख जोड़ने का कारण

नारद बोले—आप भगवान् के अंश से उत्पन्न एवं बुद्धि, तेज और विक्रम में उन्हीं के समान हैं, अतः मेरा प्रश्न सुनने की कृपा करें ॥१॥ मैंने विघ्ननाशक (गणेश) की परमाद्भुत विघ्नकथा सुन ली और विश्व के कारण (भगवान्) के मुख से उस विघ्न का कारण भी सुन लिया है। तीनों लोकों के स्वामी शंकर के पुत्र को (गणेश के धड़ पर) जो हाथी का मुख जोड़ा गया है, मुझे सन्देह है। अतः उसके निवारणार्थ मैं इस समय वही सुनना

स्थितेष्वन्येषु बहुषु जन्तुष्वब्जभुवः पते। सुप्राणिनां सुरूपेषु नानारूपेषु रूपिणाम् ॥४॥

नारायण उवाच

गजास्ययोजनायाश्च कारणं शृणु नारद। गोप्यं सर्वपुराणेषु वेदेषु च सुदुर्लभम् ॥५॥
तारणं सर्वदुःखानां कारणं सर्वसंपदाम्। हारणं विपदां चैव रहस्यं पापमोचनम् ॥६॥
महालक्ष्म्याश्च चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम्। सुखदं मोक्षदं चैव चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥७॥
शृणु तात प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। रहस्यं पाद्मकल्पस्य पुरा तातमुखाच्छ्रुतम् ॥८॥
एकदैव महेन्द्रश्च पुष्पभद्रां नदीं ययौ। महासंपन्मदोन्मत्तः कामी राजश्रियाऽन्वितः ॥९॥
ततोरेऽतिरहःस्थाने पुष्पोद्याने मनोहरे। अतीव दुर्गमेऽरण्ये सर्वजन्तुविवर्जिते ॥१०॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रवे। सुगंधिपुष्पसंश्लिष्टवायुना सुरभीकृते ॥११॥
ददर्श रम्भां तत्रैव चन्द्रलोकात्समागताम्। सुरतश्रमविश्रान्तिकामुकीं कामकामुकीम् ॥१२॥
इच्छन्तीमीप्सितां क्रीडां गच्छन्तीं मदनाश्रयम्। एकाकिनीमुन्मनस्कां मन्मथोद्गतमानसाम् ॥१३॥
सुश्रोणीं सुदतीं श्यामां बिम्बाधरसरोरुहाम्। बृहन्नितम्बभारार्तां मत्तवारणगामिनीम् ॥१४॥

चाहता हूँ। हे ब्रह्मपते! अन्य अनेक जीव-जन्तुओं और अनेक भाँति के उत्तम प्राणियों के विभिन्न प्रकार के सुन्दर रूपों के रहते हाथी का ही मुख उनके धड़ पर क्यों जोड़ा गया ॥२-४॥

नारायण बोले—हे नारद! हाथी का मुख, जो (उनके धड़ पर) जोड़ा गया है, वह रहस्यमय है, समस्त पुराणों और वेदों में अतिदुर्लभ है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥५॥ वह समस्त दुःखों से पार करने वाला, समस्त सम्पत्तियों का कारण, विपत्तिनाशक, रहस्यमय एवं पाप से मुक्त करने वाला है। महालक्ष्मी का भी चरित, समस्त मंगलों का मंगल, सुखदायक, मोक्षप्रद और चारों वर्ग (धर्म अर्थ, काम एवं मोक्ष) का फल देने-वाला है। हे तात! मैं तुम्हें पाद्मकल्प का एक प्राचीन इतिहास सुना रहा हूँ, जो रहस्यमय है और जिसे पूर्वकाल में मैंने पिता के मुख से सुना था ॥६-८॥

एक बार महेन्द्र ने पुष्पभद्रा नदी की यात्रा की। वे उस समय महालक्ष्मी के मद से उन्मत्त, राज-लक्ष्मी-सम्पन्न एवं कामी थे ॥९॥ उस नदी के तीर पर एकान्त स्थान में फुलवारी थी, जो मनोहर और अति दुर्गम जंगल में थी तथा जहाँ कोई जीवजन्तु नहीं रहता था ॥१०॥ वहाँ भौरों की गुञ्जार एवं कोकिलकण्ठ की मधुरध्वनि सुनायी पड़ती थी। सुगन्धित पुष्पों से मिली हुई वायु द्वारा वह उद्यान अतिसुगन्धित था। उन्होंने वहीं रम्भा को देखा, जो चन्द्रलोक से सुरत-श्रम को दूर करने के लिए आयी थी और कामुकी थी ॥११-१२॥ अपनी यथेच्छ क्रीड़ा के लिए वह कामदेव के गृह जा रही थी। (इसलिए) वह अकेली, उन्मन तथा कामपीड़ित चित्त वाली थी। ॥१३॥ उसका सुन्दर श्रोणीभाग था, सुन्दर दाँतों की पंक्तियाँ थीं एवं वह स्वयं श्यामा (सोलह वर्ष की युवती) थी। उसके खिले कमल की भाँति अधर-बिम्ब थे और वह बृहत् नितम्ब के भार को सम्हालने में दुःखी हो रही थी तथा मतवाले हाथी की भाँति मन्दगति से चल रही थी ॥१४॥ मन्दहास समेत उसका मुख शारदीय चन्द्रमा के समान था। वह तीखी

सस्मितास्यशरच्चन्द्रां सुकटाक्षं च बिभ्रतीम् । बिभ्रतीं कबरीं रम्यां मालतीमाल्यशोभिताम् ॥१५॥
वह्निशुद्धांशुकधरां रत्नभूषणभूषिताम् । कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरं बिभ्रतीं मुदा ॥१६॥
नीलोत्पलदलश्यामकज्जलोज्ज्वललोचनाम् । मणिकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजिताम् ॥१७॥
अत्युन्नतं सुकठिनं पत्रराजिविराजितम् । सुखदं रसिकानां च स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम् ॥१८॥
सर्वसौभाग्यवेषाढ्यां सुभगां सुरतोत्सुकाम् । प्राणाधिकां च देवानां स्वच्छां स्वच्छन्दगामिनीम् ॥१९॥
वरामप्सरसां रम्यामतीव स्थिरयौवनाम् । गुणरूपवतीं शान्तां मुनिमानसमोहिनीम् ॥२०॥
दृष्ट्वा तामतिवेषाढ्यां तत्कटाक्षेण पीडितः । इन्द्रोऽतीन्द्रियचापल्यात्प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२१॥

इन्द्र उवाच

क्व गच्छसि वरारोहे क्व गताऽसि मनोहरे। मया दृष्टा हि सुचिरात्कल्याणि सुभगेऽधुना ॥२२॥
तवान्वेषणकर्ताऽहं श्रुत्वा वाचिकवक्त्रतः । त्वय्यासक्तमनाश्चास्मि नान्यां वै गणयामि च ॥२३॥
सुवासितजलार्थी यः किमिच्छेत्पङ्किलं जलम् । पङ्कं नेच्छेच्चन्दनार्थी पङ्कजार्थी न चोत्पलम् ॥२४॥
सुधार्थी न सुरामिच्छेद्दुग्धार्थी नाऽऽविलं जलम्। सुगन्धिपुष्पशायी यो ह्यास्त्रतल्पं न चेच्छति ॥२५॥
स्वर्गी च नरकं नेच्छेत्सुभोगी दुष्टभोजनम् । पण्डितैः सह संवासी नेच्छेत्स्त्रीसंनिधिं नरः ॥
विहाय रत्नाभरणं कोऽपीच्छेल्लोहभूषणम् ॥२६॥

आँखों की कोर से देखने वाली, सुन्दर केशपाश वाली, रमणीय और मालती माला से सुशोभित थी ॥१५॥ वह अग्निविशुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित, रत्नों के भूषणों से भूषित, कस्तूरी बिन्दी समेत सिन्दूर की बिंदी धारण किये, नील कमल दल की भाँति श्यामल और कजरारे उज्ज्वल नेत्र वाली, मणि के युगल कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थल वाली तथा अति उन्नत एवं सुकठिन स्तन युगलों से विराजमान थी। जो स्तनद्वय पत्रराजि (कामकला) से सुशोभित एवं रसिकों के लिए सुखप्रद था। ऐसी सुन्दरी को देखकर, जो समस्त शोभास्वरूप, उत्तम वेष की रचना से युक्त, सुभग, सुरत के लिए उत्सुक, देवों की प्राणप्यारी, स्वच्छ, स्वच्छन्द विचरने वाली, अप्सराओं में श्रेष्ठ, अतीव रम्या, स्थायी यौवन वाली, गुणरूप भूषित, शान्त एवं मुनिजनों के चित्त को मोहित करने वाली थी, इन्द्र उसके कटाक्ष से समाहित हो गये और इन्द्रियों की चपलतावश उन्होंने उससे कहना भी आरम्भ किया ॥१६-२१॥

इन्द्र बोले—हे वरारोहे! कहाँ जा रही हो। हे मनोहरे! कहाँ गयी थी। हे कल्याणि, हे सुभगे! मैंने बहुत दिनों पर आज तुम्हें देखा है ॥२२॥ मैं तुम्हारी ही खोज कर रहा हूँ। मैं दूत के मुख से तुम्हारे विषय में सुन चुका हूँ, इसीलिए मेरा मन तुम्हीं में आसक्त है अन्य और किसी को नहीं चाहता ॥२३॥ क्योंकि सुवासित जल चाहने वाला क्या कभी पंकिल (गँदले-जल) की इच्छा करता है? (नहीं) और चन्दन चाहने वाला कीचड़ नहीं चाहता, तथा पंकज (कमल) चाहने वाला उत्पल (कुँई) नहीं चाहता ॥२४॥ अमृत का इच्छुक, सुरा (मद्य) नहीं चाहता, दुग्ध का इच्छुक मटमैला जल नहीं चाता। सुगन्धित पुष्पों पर शयन करने वाला अस्त्र की शय्या नहीं चाहता ॥२५॥ उसी भाँति स्वर्ग का इच्छुक नरक नहीं चाहता, उत्तम भोगी दुष्ट भोजन की रुचि नहीं करता, पण्डितों के साथ रहने वाला स्त्रियों का सम्पर्क नहीं चाहता। भला रत्नों के आभूषण त्याग कर

त्वां नाऽऽश्लिष्य महाविज्ञांको मूढो गन्तुमिच्छति । विहाय गङ्गां को विज्ञो नदीमन्यां च वाञ्छति ॥२७॥
इन्द्रियैश्चेन्द्रियरतिं वर्धयन्तीं पदे पदे । वरं प्रार्थयितारश्च प्राणिनश्च सुखार्थिनः ॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा मघवानवरुह्य गजेश्वरात् । कामयुक्तश्च पुरतस्तस्थौ तस्याश्च नारद ॥२९॥
श्रुत्वा तद्वचनं रम्भा महाशृङ्गारलोलुपा । जहासाऽऽनम्रवदना पुलकाञ्चितविग्रहा ॥३०॥
स्मेराननकटाक्षेण स्तनोर्वोर्दर्शनेन च । [1]नर्मोक्तिगर्भवाक्येन चाहरत्तस्य चेतनाम् ॥३१॥
मितं सारं सुमधुरं सुस्निग्धं कोमलं प्रियम् । पुरुषायत्तबीजं च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३२॥

रम्भोवाच

यास्यामि वाञ्छितं यत्र प्रश्नेन तव किं फलम् । नाहं संतोषजननी धूर्तानां दुष्टमित्रता ॥३३॥
यथा मधुकरो लोभात्सर्वपुष्पासवं लभेत् । स्वादु यत्रातिरिक्तं स तत्र तिष्ठति संततम् ॥३४॥
तथैव कामुकी लोके भ्रमेद्भ्रमरवत्सदा । चाञ्चल्यात्स हि कास्वेव वायुवद्रसमाहरेत् ॥३५॥
सुपुमानङ्गवत्स्त्रीणां यथा शाखाश्च शाखिषु । कामुकी काकवल्लोलः फलं भुक्त्वा प्रयाति च ॥३६॥
स्वकार्यमुद्धरेन्नावत्तावद्वासप्रयोजनम् । स्थितिः कार्यानुरोधेन यथा काष्ठे हुताशनः ॥३७॥

लोहे का भूषण कौन चाहेगा ? ॥२६॥ तुम महानिपुण का आलिंगन न करके कौन मूर्ख जाना चाहेगा ? क्योंकि कौन बुद्धिमान् गंगा को त्याग कर अन्य नदी की इच्छा करता है ? तुम सुख चाहने वाले तथा प्रार्थना करने वाले प्राणी की पग-पग पर अपनी इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियरति बढ़ाती हो ॥२७-२८॥ हे नारद ! इतना कहकर भगवान् महेन्द्र गजराज से उतर कर काम-भावना से उसके सामने खड़े हो गये ॥२९॥ महाशृंगार का लोभ करने वाली रम्भा उनकी बातें सुनकर नीचे मुख किये हँस पड़ी। उस समय उसके शरीर में रोमाञ्च हो रहा था ॥३०॥ हँसमुख कटाक्ष से तथा स्तनों और जाँघों को दिखाकर एवं परिहास की बातों से उनके मन को अपने अधीन कर लिया ॥३१॥ और मित (अल्प) सार (तत्त्व), अति मधुर, सुस्निग्ध, कोमल प्रिय एवं पुरुषों को अपने अधीन करने वाली बातें भी कहना आरम्भ किया ॥३२॥

रम्भा बोली—जहाँ की इच्छा है, वहाँ जाऊँगी। तुम्हें पूछने से क्या लाभ ? मैं तुम्हारे संतोष का कार्य नहीं कर सकती हूँ, क्योंकि धूर्तों की मित्रता अच्छी नहीं होती है ॥३३॥ जिस प्रकार भौंरा लोभवश सभी पुष्पों के रस को लेता है किन्तु जहाँ सबसे अधिक स्वाद मिलता है, वहीं निरन्तर रहता है ॥३४॥ उसी प्रकार कामुकी स्त्रियाँ भी भौंरे की भाँति सदैव लोक में विचरण करती रहती हैं। किन्तु वह (पुरुष) अपनी चञ्चलतावश वायु की भाँति किन्हीं का रस (आनन्द) लेता है ॥३५॥ वृक्षों में शाखा की भाँति सुन्दर पुरुष भी सुन्दरियों के अंगस्वरूप होते हैं। कामुकी स्त्री कौवे के समान चपल होती है—फल (रस) का उपभोग किया और चलती बनी ॥३६॥ जब तक अपना कार्य रहता है तभी तक निवास का प्रयोजन रहता है। क्योंकि काष्ठ (लकड़ी) में स्थित अग्नि की भाँति वह भी कार्यानुरोधवश ही स्थित रहती है ॥३७॥ तालाब में जब तक जल रहता है, उसके जीव-जन्तु तभी तक वहाँ रहते हैं और

---

१ क. कामान्याहुतिवा० ।

यावत्तडागे तोयानि तावद्यादांसि तेषु च। शोषारम्भे च तोयानि (नां) यान्ति स्थानान्तरं पुनः ॥३८॥
त्वं देवानामीश्वरोऽसि कामिनीनां च वाञ्छितः। पुमांसं रसिकं शश्वद्वाञ्छन्ति रसिकाः सुखात् ॥३९॥
युवानं रसिकं शान्तं सुवेषं सुन्दरं प्रियम्। गुणिनं धनिनं स्वच्छं कान्तमिच्छति कामिनी ॥४०॥
दुःशीलं रोगिणं वृद्धं रतिशक्तिवियोजितम्। अदातारमविज्ञं च नैव वाञ्छन्ति योषितः ॥४१॥
का मूढा न च वाञ्छन्ति त्वामेवं गुणसागरम्। तवाऽऽज्ञाकारिणीं दासीं गृहाणात्र यथा सुखम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा सस्मिता सा च तं ययौ वक्रचक्षुषा। कामाग्निदग्धा विगलल्लज्जा तस्थौ समीपतः ॥४३॥
ज्ञात्वा भावं स्मरार्तायाः स्मरशास्त्रविशारदः। गृहीत्वा तां पुष्पतल्पे विजहार तया सह ॥४४॥
चुचुम्ब रहसि प्रौढां नग्नां च सुभगां वराम्। पक्वबिम्बाधरौष्ठीं च सुदत्या चुम्बितस्तया ॥४५॥
नानाप्रकारशृङ्गारान्विपरीतादिकान्मुने। चकार कामी तत्रैव शृङ्गारो मूर्तिमानिव ॥४६॥
तौ कामाहितचित्तौ नो बुबुधाते दिवानिशम्। अन्योन्यगतचित्तौ च कामार्तौ ज्ञानवर्जितौ ॥४७॥
स च कृत्वा स्थले क्रीडां तया सह सुरेश्वरः। ययौ जलविहारार्थं पुष्पभद्रानदीजलम् ॥४८॥
स चकार जलक्रीडां तया सह मुदा क्षणम्। जलात्स्थले स्थलात्तोये विजहार पुनः पुनः ॥४९॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन वर्त्मना मुनिपुंगवः। सशिष्यो याति दुर्वासा वैकुण्ठाच्छंकरालयम् ॥५०॥

जब जल सूखने लगता है तो वे दूसरे स्थान पर चले जाते हैं ॥३८॥ तुम देवताओं के अधीश्वर हो, कामिनियों के मनचाहे मनोरथ हो और रसीली स्त्रियाँ रसिक पुरुष को ही सुख के लिए निरन्तर चाहती हैं। कामिनी स्त्री युवा, रसिक, शान्त, उत्तम वेष-भूषा वाला, सुन्दर, प्रिय, गुणी, धनी और स्वच्छ कान्त चाहती है। दुष्ट स्वभाव वाले, वृद्ध, रति-शक्तिहीन, अदाता और मूर्ख को स्त्रियाँ कभी नहीं चाहतीं ॥३९-४१॥ इसलिए कौन ऐसी मूर्खा होगी, जो तुम्हारे ऐसे गुणसागर को न चाहती हो। मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करने वाली दासी हूँ, तुम्हें जिस प्रकार सुख मिले, दासी से सेवा ले सकते हो ॥४२॥ इतना कहकर उसने मन्द मुसुकाती हुई अपनी तिर्छी आंखों से उन्हें देखा। वह उस समय कामाग्नि से जल रही थी और उसी कारण निर्लज्ज भी हो रही थी। वह उनके समीप अवस्थित हुई ॥४३॥ कामशास्त्र के निपुण विद्वान् इन्द्र ने उस कामपीड़ित का भाव समझ कर उसे पकड़ लिया और पुष्प-शय्या पर उसके साथ विहार करने लगे ॥४४॥ एकान्त स्थान में नग्न, श्रेष्ठ सुन्दरी तथा पके बिम्बाफल के समान अधर और सुन्दर दाँतों की पंक्तियों वाली उस प्रौढ़ा का चुम्बन किया और वह भी उन्हें चूमने लगी ॥४५॥ हे मुने ! विपरीतादि अनेक प्रकारके शृंगार रस के उपभोग से वे बहुत सुखी हुए, जो स्वयं मूर्तिमान् शृंगार की भाँति दिखायी देते थे ॥४६॥ वे दोनों सुरत-क्रीड़ा में इतने निमग्न थे कि उन्हें दिनरात का ज्ञान नहीं रह गया था, वे कामपीड़ित होकर एक दूसरे को अदैव चाहते थे उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया था ॥४७॥ सुरेश्वर इन्द्र उसके साथ स्थल पर क्रीड़ा करके पुनः जलविहार करने के लिए पुष्पभद्रानदी में प्रविष्ट हो गये ॥४८॥ उन्होंने अतिप्रसन्न हो कर उसके साथ जलविहार किया और पुनः जल से निकलकर स्थल पर तथा स्थल से जाकर जल में उसके साथ बार-बार रतिक्रीड़ा करने लगे ॥४९॥ इसी बीच मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा अपने शिष्यों समेत उसी मार्ग से, वैकुण्ठ से कैलास जा रहे थे ॥५०॥ उस समय मुनीन्द्र दुर्वासा को देखकर देवराज इन्द्र एकदम

तं च दृष्ट्वा मुनीन्द्रं च देवेन्द्रः स्तब्धमानसः। ननामाऽऽगत्य सहसा ददौ तस्मै स चाऽऽशिषः ॥५१॥
पारिजातप्रसूनं यद्दत्तं नारायणेन वै। तच्च दत्तं महेन्द्राय मुनीन्द्रेण महात्मना ॥५२॥
दत्त्वा पुष्पं महाभागस्तमुवाच कृपानिधिः। माहात्म्यं तस्य यत्किंचिदपूर्वं मुनिसत्तमः ॥५३॥

दुर्वासा उवाच

सर्वविघ्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम्। मूर्ध्नीदं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः ॥५४॥
पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत्। तच्छायेव महालक्ष्मीर्न जहाति कदाऽपि तम् ॥५५॥
ज्ञानेन तेजसा बुद्ध्या विक्रमेण बलेन च। सर्वदेवाधिकः श्रीमान्हरितुल्यपराक्रमः ॥५६॥
भक्त्या मूर्ध्नि न गृह्णाति योऽहंकारेण पामरः। नैवेद्यं च हरेरेव स भ्रष्टश्रीः स्वजातिभिः ॥५७॥
इत्युक्त्वा शंकरांशश्च ह्यगमच्छंकरालयम्। ततस रम्भान्तिके तिष्ठञ्चिक्षेप गजमस्तके ॥५८॥
तेन भ्रष्टश्रियं दृष्ट्वा सा जगाम सुरालयम्। पुंश्चली योग्यमिच्छन्ती नापरं चञ्चलाऽधमा ॥५९॥
देवराजं परित्यज्य गजराजो महाबली। प्रविवेश महारण्यं तं निक्षिप्य स्वतेजसा ॥६०॥
तत्रैव करिणीं प्राप्य मत्तः संबुभुजे बलात्। साऽतो बभूव वशगा योषिज्जातिः सुखार्थिनी ॥६१॥
तयोर्बभूवापत्यानां निवहस्तत्र कानने। हरिस्तन्मस्तकं छित्त्वा योजयामास बालके ॥६२॥

स्तब्धचित्त हो गये। पुनः सहसा आकर उन्हें प्रणाम किया और मुनि ने उन्हें शुभाशिष प्रदान किया ॥५१॥ महात्मा दुर्वासा ने पारिजात पुष्प महेन्द्र को दे दिया, जिसे नारायण ने उन्हें दिया था ॥५२॥ महाभाग एवं कृपा-निधान मुनिश्रेष्ठ ने पुष्प देकर उसका कुछ माहात्म्य भी उन्हें बतलाया, जो अपूर्व था ॥५३॥

दुर्वासा बोले—हे देवेन्द्र! भगवान् का दिया हुआ यह सर्वविघ्ननाशक पुष्प जिसके शिरस्थान पर रहेगा, चारों ओर से उसी का जय होगा ॥५४॥ सब लोगों के पहले उसकी पूजा होगी और वह देवों में अग्रणी होगा। तथा उसकी छाया की भाँति महालक्ष्मी उसका त्याग कभी नहीं करेंगी ॥५५॥ ज्ञान, तेज, बुद्धि, विक्रम, बल में वह सभी देवों से अधिक, श्रीमान् एवं विष्णु के समान पराक्रमी होगा ॥५६॥ जो पामर (नीच) अहंकार वश भगवान् के इस नैवेद्य-पुष्प को भक्तिपूर्वक शिर पर धारण न करेगा, वह अपनी जाति में भ्रष्ट होकर श्रीहीन हो जायगा ॥५७॥ इतना कहकर दुर्वासा शंकर के घर चले गये। अनन्तर रंभा के समीप रहते इन्द्र ने उस माला को गजराज के मस्तक पर फेंक दिया, जिससे वे तुरन्त श्रीहत हो गये और उस अवस्था में उन्हें देखकर रम्भा भी स्वर्ग चली गयी, क्योंकि वह पुंश्चली, चञ्चल और अधम होने के नाते अपने समान ही पुरुष को चाहती थी, अन्य को नहीं ॥५८-५९॥ महाबली गजराज ने भी देवराज इन्द्र का त्याग कर महारण्य में प्रवेश किया और मदमत्त होने के नाते अपने तेज द्वारा उन्हें गिराकर वह किसी हथिनी के साथ बलात् उपभोग करने लगा। स्त्री जाति की होने से वह सुखार्थिनी हथिनी उस गजराज के वशीभूत हो गयी। उस जंगल में उन दोनों की संतानों का समूह हो गया। भगवान् ने उसी गजराज का मस्तक काट कर उस बालक (गणेश) के धड़ पर जोड़

इत्येवं कथितं वत्स किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। गजास्ययोजनायाश्च कारणं पापनाशनम् ॥६३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणपतेर्गजास्ययोजनाहेतुकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

ते देवा ब्रह्मशापेन निःश्रीकाः केन वा प्रभो। बभूवुस्तद्रहस्यं च गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥१॥
कथं वा प्रापुरेते तां कमलां जगतां प्रसूम्। किं चकार महेन्द्रश्च तद्भवान्वक्तुमर्हसि ॥२॥

नारायण उवाच

गजेन्द्रेण पराभूतो रम्भया च सुमन्दधीः। भ्रष्टश्रीर्दैन्ययुक्तश्च स जगामामरावतीम् ॥३॥
तां ददर्श निरानन्दो निरानन्दां पुरीं मुने। दैन्यग्रस्तां बन्धुहीनां वैरिवर्गैः सभाकुलाम् ॥४॥
इति श्रुत्वा दूतमुखाज्जगाम गुरुमन्दिरम्। तेन देवगणैः सार्धं जगाम ब्रह्मणः सभाम् ॥५॥
गत्वा ननाम तं शक्रः सुरैः सार्धं तथा गुरुः। तुष्टाव वेदवाक्यैश्च स्तोत्रेणापि च संयतः ॥६॥
प्रवृत्तिं कथयामास वाक्पतिस्तं प्रजापतिम्। श्रुत्वा ब्रह्मा नम्रवक्त्रः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥७॥

दिया ॥६०-६२॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें गजमुख जोड़ने की पापनाशिनी कथा सुना दी और क्या सुनना चाहते हो ॥६३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में गणपति के गजमुख जोड़ने का हेतु कथन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

अध्याय २१

इन्द्र को पुनः लक्ष्मी की प्राप्ति

नारद बोले—हे प्रभो! किस ब्रह्म-शाप द्वारा देवता लोग श्रीहीन हो गये, यह गोपनीय और अतिदुर्लभ रहस्य बताने की कृपा करें तथा यह भी कहने का अनुग्रह करें कि इन्द्र आदि देवों को जगज्जननी लक्ष्मी किस प्रकार प्राप्त हुई और उसके पश्चात् इन्द्र ने क्या किया ॥१-२॥

नारायण बोले—महामूर्ख इन्द्र गजराज और रम्भा द्वारा अपमानित होने पर श्रीहत एवं दीन-हीन होकर अमरावती पुरी चले गये ॥३॥ हे मुने! वहाँ पहुँचने पर दुःखी इन्द्र ने पुरी को भी आनन्द-रहित, दीनता से घिरी, बन्धुविहीन और शत्रुओं से आच्छन्न देखा ॥४॥ दूत के मुख से भी वही उपर्युक्त बातें सुनकर उसे साथ लिए इन्द्र गुरु (बृहस्पति) के घर गये और वहाँ से बृहस्पति एवं देवों के साथ ब्रह्मा की सभा में गये ॥५॥ इन्द्र और बृहस्पति ने देवों समेत वहाँ उन्हें नमस्कार किया और संयत भाव से वेदवाक्य एवं स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति की ॥६॥ अनन्तर बृहस्पति ने ब्रह्मा से समस्त समाचार कह सुनाया, जिसे सुनकर ब्रह्मा ने नीचे मुख करके कहना आरम्भ किया ॥७॥

ब्रह्मोवाच

मत्प्रपौत्रोऽसि देवेन्द्र शश्वद्राजश्रिया ज्वलन्। लक्ष्मीसमः शचीभर्ता परस्त्रीलोलुपः सदा ॥८॥
गौतमस्याभिशापेन भगाङ्कः सुरसंसदि। पुनर्लज्जाविहीनस्त्वं परस्त्रीरतिलोलुपः ॥९॥
यः परस्त्रीषु निरतस्तस्य श्रीर्या कुतो यशः। स च निन्द्यः पापयुक्तः शश्वत्सर्वसभासु च ॥१०॥
नैवेद्यं श्रीहरेरेव दत्तं दुर्वाससा च ते। गजमूर्ध्नि त्वया न्यस्तं रम्भयाऽऽहृतचेतसा ॥११॥
क्व सा रम्भा सर्वभोग्या क्वाधुना त्वं श्रिया हृतः। सर्वसौख्यप्रदात्री त्वां गता त्यक्त्वा क्षणेन सा ॥१२॥
वेश्या सश्रीकमिच्छन्ती निःश्रीकं न च चञ्चला। नवं नवं प्रार्थयन्ती परिनिन्द्य पुरातनम् ॥१३॥
यद्गतं तद्गतं वत्स निष्पन्नं न निवर्तते। भज नारायणं भक्त्या पद्मायाः प्राप्तिहेतवे ॥१४॥
इत्युक्त्वा तं जगत्स्रष्टा स्तोत्रं च कवचं ददौ। नारायणस्य मन्त्रं च नारायणपरायणः ॥१५॥
सतैः सार्धं च गुरुणा ह्याजपन्मन्त्रमीप्सितम्। गृहीत्वा कवचं तेन पर्यष्टौत्पुष्करे हरिम् ॥१६॥
वर्षमेकं निराहारो भारते पुण्यदे शुभे। सिषेवे कमलाकान्तं कमलाप्राप्तिहेतवे ॥१७॥
आविर्भूय हरिस्तस्मै वाञ्छितं च वरं ददौ। लक्ष्मीस्तोत्रं च कवचं मन्त्रमैश्वर्यवर्धनम् ॥१८॥

ब्रह्मा बोले—हे देवेन्द्र! तुम मेरे प्रपौत्र (परपोता) हो, निरन्तर राजश्री से विभूषित रहते हो और लक्ष्मी के समान शची के तुम पति हो, किन्तु फिर भी दूसरे की स्त्री के लिए सदा लालायित रहते हो ॥८॥ देवसभा में गौतम जी के शाप देने से तुम्हारे सर्वांग में भग हो भग हो गया था, किन्तु फिर भी तुम निर्लज्ज को परायी स्त्री के उपभोग का लोभ बना ही रहा ॥९॥ जो परायी स्त्रियों में सदा आसक्त रहता है, उसे लक्ष्मी और यश की प्राप्ति कहाँ से हो सकती है? वह निरन्तर पापी और सभी सभाओं (समाजों) में निन्दा का पात्र होता है ॥१०॥ दुर्वासा जी ने तुम्हें भगवान् के प्रसाद रूप में माला दी थी, जिसे तुमने रम्भा द्वारा अपहृतचित्त होने के कारण हाथी के मस्तक पर डाल दिया ॥११॥ अब सर्वभोग्या रम्भा कहाँ है और श्रीहत तुम कहाँ हो? समस्त सुख देने वाली वह रम्भा तुम्हें क्षणमात्र में छोड़ कर चली गयी ॥१२॥ वेश्याएँ चञ्चल स्वभाव की होती हैं—वे श्रीसम्पन्न को ही चाहती हैं, श्रीहीन को नहीं। वे पुराने को छोड़कर नित्य नये-नये को ढूँढती हैं ॥१३॥

हे वत्स! जो हुआ-सो हुआ, जो गया वह लौटेगा नहीं अतः लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए अब भक्तिपूर्वक नारायण की सेवा करो। इतना कहकर नारायण-परायण ब्रह्मा ने जगत्स्रष्टा भगवान् का स्तोत्र, कवच और मन्त्र उन्हें दिया ॥१४-१५॥ देवों को साथ लिए बृहस्पति ने उस अभीष्ट मंत्र का जप किया और कवच ग्रहण कर इन्द्र ने पुष्कर क्षेत्र में भगवान् की स्तुति आरम्भ की ॥१६॥ भारत के उस शुभ एवं पुण्यप्रद स्थान में उन्होंने एक वर्ष तक निराहार रहकर कमला की प्राप्ति के लिए कमलाकान्त भगवान् की सेवा की ॥१७॥ अनन्तर भगवान् ने प्रकट होकर उन्हें अभिलषित वरदान, लक्ष्मी-स्तोत्र, कवच और ऐश्वर्यवर्द्धक मन्त्र प्रदान किया ॥१८॥

दत्त्वा जगाम वैकुण्ठमिन्द्रः क्षीरोदमेव च। गृहीत्वा कवचं स्तुत्वा प्राप पद्मालयां मुने ॥१९॥
सुरेश्वरोऽरिं जित्वा वै ह्यलभच्चामरावतीम्। प्रत्येकं च सुराः सर्वे स्वालयं प्रापुरीप्सितम् ॥२०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शक्रलक्ष्मीप्राप्तिर्नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ। महालक्ष्म्याश्च लक्ष्मीशस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥१॥

नारायण उवाच

पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरराम सुरेश्वरः। आविर्बभूव तत्रैव क्लिष्टं दृष्ट्वा हरिः स्वयम् ॥२॥
तमुवाच हृषीकेशो वरं वृणु यथेप्सितम्। स च वव्रे वरं लक्ष्मीमीशस्तस्मै ददौ मुदा ॥३॥
वरं दत्त्वा हृषीकेशः प्रवक्तुमुपचक्रमे। हितं सत्यं च सारं च परिणामसुखावहम् ॥४॥

मधुसूदन उवाच

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम्। परमैश्वर्यजनकं सर्वशत्रुविमर्दनम् ॥५॥

हे मुने! देकर भगवान् वैकुण्ठ चले गये और इन्द्र ने क्षीरसागर में पहुँचकर कवच धारण किया तथा स्तुति के द्वारा लक्ष्मी को प्राप्ति की ॥१९॥ इन्द्र ने शत्रु को जीतकर अमरावती पुरी और प्रत्येक देव ने अपने-अपने अभीष्ट स्थान की प्राप्ति की ॥२०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में इन्द्र की लक्ष्मी-प्राप्ति कथन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

अध्याय २२

लक्ष्मी का स्तोत्र और कवच

नारद बोले—हे तपोधन! लक्ष्मी के अधीश्वर भगवान् विष्णु ने वहाँ प्रकट होकर उन्हें महालक्ष्मी का कौन स्तोत्र और कवच प्रदान किया, बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण बोले—इन्द्र पुष्कर क्षेत्र में भगवान् की तपस्या कर रहे थे—उन्हें अति दुःखी देखकर भगवान् स्वयं वहाँ प्रकट हो गये ॥२॥ भगवान् हृषीकेश ने उनसे कहा—यथेच्छ वरदान मांगो। उन्होंने लक्ष्मी की याचना की। भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रदान किया ॥३॥ वर प्रदान करके भगवान् हृषीकेश ने उनसे कुछ कहना भी आरम्भ किया, जो हित, सत्य, सारभाग और परिणाम में सुखदप्रद था ॥४॥

मधुसूदन बोले—हे शक्र! इस कवच को ग्रहण करो, जो समस्त दुःखों का नाशक, परम ऐश्वर्यप्रद एवं सम्पूर्ण शत्रुओं का मर्दन करने वाला है ॥५॥ समस्त जगत् के जलमग्न होने पर मैंने पहले समय में इसे ब्रह्मा

ब्रह्मणे च पुरा दत्तं विष्टपे च जलप्लुते। यद्धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्ययुतो विधिः ॥६॥
बभवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यतः। सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः ॥७॥
पङ्क्तिश्छन्दश्च सा देवी स्वयं पद्मालया वरा। सिद्धैश्वर्यसुखेष्वेव विनियोगः प्रकीर्तितः ॥८॥
यद्धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी [1]भवेत्। मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया ॥९॥
नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचने। केशान्केशवकान्ता च कपालं कमलालया ॥१०॥
जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं स्कन्धं संपत्प्रदा सदा। ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥११॥
ॐ ह्रीं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु। पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मं च [2]ते नमः ॥१२॥
ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः पादौ पातु मे संततं चिरम्। ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम् ॥१३॥
ॐ श्रीं [3]महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्गं पातु मे सदा। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः ॥१४॥
इति ते कथितं वत्स सर्वसंपत्करं परम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१५॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयी भवेत् ॥१६॥
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन। तस्य च्छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि ॥१७॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं स मन्दधीः। शतलक्षप्रजापेऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥१८॥

को दिया, जिसे धारण कर ब्रह्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से सम्पन्न होकर संसार में श्रेष्ठ हो गये ॥६॥ सभी मनुगण समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न हो गये। सकल ऐश्वर्य्य के प्रदायक इस कवच के ब्रह्मा ऋषि, पंक्ति छन्द तथा स्वयं कमला श्रेष्ठ देवता हैं और सिद्धि, ऐश्वर्य्य तथा सुख के लिए इसका विनियोग होता है। इस कवच को धारण कर लोग सर्वत्र विजयी होते हैं। पद्मा मेरे मस्तक की रक्षा करें, हरिप्रिया कण्ठ को रक्षा करें, लक्ष्मी मेरी नासिका की रक्षा करें, कमला दोनों नेत्रों की रक्षा करें, केशवकान्ता केशों की, कमलालया कपाल की जगत्प्रसू युगल गण्डस्थल की और सम्पत्प्रदा दोनों कन्धों की सदा रक्षा करें। 'ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' सदा पीठ की 'ओं ह्रीं श्रीं पद्मालया स्वाहा' सदा वक्षःस्थल की और श्री मेरे कंकाल तथा दोनों बाहुओं की रक्षा करें, तुम्हें नमस्कार है ॥७-१२॥ 'ओं ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः' निरन्तर मेरे चरण की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा' नितम्ब की और 'ओं श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरे सर्वांग की रक्षा करें। 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरी चारों ओर से रक्षा करे ॥१३-१४॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें अद्भुत कवच सुना दिया, जो समस्त सम्पत्ति समेत सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य प्रदान करता है ॥१५॥ सविधि गुरु की अर्चना करके जो इस कवच को कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है। महालक्ष्मी उसके घर का त्याग कभी नहीं करती हैं और प्रत्येक जन्म में छाया की भाँति उसके साथ रहती हैं ॥१६-१७॥ किन्तु जो मूर्ख बिना कवच जाने लक्ष्मी की आराधना करेगा, उसके लिए, लाख जप करने पर भी मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होगा ॥१८॥

---

१ क. सुखी। २ क. च श्रीं न०। ३ क. ह्रीं।

नारायण उवाच

दत्त्वा तस्मै च कवचं मन्त्रं वै षोडशाक्षरम् । संतुष्टश्च जगन्नाथो जगतां हितकारणम् ॥१९॥
ॐ ह्रीं[1] श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै स्वाहा । ददौ तस्मै च कृपया चेन्द्राय च महामुने ॥२०॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं गोपनीयं सुदुर्लभम् । सिद्धैर्मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम् ॥२१॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२२॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम् । कस्तूरीबिन्दुमध्यस्थं सिन्दूरं भूषणं तथा ॥२३॥
अमूल्यरत्नरचितकुण्डलोज्ज्वलभूषणम् । बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यशोभितम् ॥२४॥
सहस्रदलपद्मस्थां स्वस्थां च सुमनोहराम् । शान्तां च श्रीहरेः कान्तां तां भजेज्जगतां प्रसूम् ॥२५॥
ध्यानेनानेन देवेन्द्र ध्यात्वा लक्ष्मीं मनोहराम् । भक्त्या संपूज्य तस्यै च चोपचारांस्तु षोडश ॥२६॥
स्तुत्वाऽनेन स्तवेनैव वक्ष्यमाणेन वासव । नत्वा वरं गृहीत्वा च लभिष्यसि च निर्वृतिम् ॥२७॥
स्तवनं शृणु देवेन्द्र महालक्ष्म्याः सुखप्रदम् । कथयामि सुगोप्यं च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२८॥

नारायण उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि न [2]क्षमाः स्तोतुमीश्वराः । बुद्धेरगोचरां सूक्ष्मां तेजोरूपां सनातनीम्
अत्यनिर्वचनीयां च को वा निर्वक्तुमीश्वरः ॥२९॥

नारायण बोले—हे महामुने ! भगवान् जगन्नाथ ने इन्द्र को कवच देकर कृपया पुनः प्रसन्नतावश उन्हें षोडशाक्षर (सोलह अक्षरों वाला) मन्त्र भी प्रदान किया, जो समस्त जगत् का हितरक्षक है—'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै स्वाहा' इस मंत्र के साथ उन्होंने सामवेदोक्त ध्यान भी बताया, जो गोपनीय, अतिदुर्लभ, सिद्धों और मुनिवरों से दुष्प्राप्य तथा निश्चित ही सिद्धि का दायक एवं शुभ है ॥१९-२१॥ श्वेत चम्पा के समान रूपरंग वाली, चन्द्रमा की भाँति प्रभा (कान्ति) वाली, अग्निविशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित, रत्नों के भूषणों से भूषित, मन्दहास समेत प्रसन्नतापूर्ण मुख वाली, भक्तों पर कृपा करने वाली, सहस्रदल वाले कमल पर आसीन, स्वस्थ, अति मनोहर, शान्त, श्रीहरि की प्रिया तथा जगत् की माता की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥२२-२५॥ देवेन्द्र ! इसी ध्यान द्वारा मनोहारिणी लक्ष्मी का ध्यान करके भक्तिपूर्वक षोडशोपचार से उनकी पूजा करनी चाहिए। हे वासव ! इसी स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति और नमस्कार करने से तुम्हें वरदान प्राप्त होगा तथा सुख मिलेगा। हे देवेन्द्र ! मैं तुम्हें महालक्ष्मी का वह सुखप्रद स्तोत्र बता रहा हूँ, जो तीनों लोकों में अतिगोप्य और दुर्लभ है, सुनो ॥२६-२८॥

नारायण बोले—हे देवि ! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, यद्यपि ईश्वर भी तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं क्योंकि तुम बुद्धि से अगोचर, सूक्ष्म, तेजोरूप, सनातनी, और अत्यंत अनिर्वचनीय हो अतः तुम्हारी निरुक्ति कौन कर सकता है ? ॥२९॥

---

१ क. श्रीं महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वा० । २ क. क्षमः स्तोतुमीश्वरीम् ।

स्वेच्छामयीं निराकारां भक्तानुग्रहविग्रहाम् । स्तौमि वाङ्मनसोः पारां किंवाऽहं जगदम्बिके ॥३०॥
परां चतुर्णां वेदानां पारबीजं भवार्णवे । [1]सर्वसस्याधिदेवीं च सर्वासामपि संपदाम् ॥३१॥
[2]योगिनां चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनां तथा । वेदानां वै वेदविदां जननीं वर्णयामि किम् ॥३२॥
यया विना जगत्सर्वमबीजं निष्फलं ध्रुवम् । यथा स्तनंधयानां च विना मात्रा सुखं भवेत् ॥३३॥
प्रसीद जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान् । वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः ॥३४॥
नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः । ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः ॥३५॥
हरिभक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः । सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्यै नमो नमः ॥३६॥
कुपुत्राः कुत्रचित्सन्ति न कुत्रापि कुमातरः । कुत्र माता पुत्रदोषं तं विहाय च गच्छति ॥३७॥
स्तनंधयेभ्य इव मे हे मातर्देहि दर्शनम् । कृपां कुरु कृपासिन्धो त्वमस्मान्भक्तवत्सले ॥३८॥
इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम् । सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं संपदः प्रदम् ॥३९॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् । महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन ॥४०॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तं च तत्रैवान्तरधीयत । देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्धं तदाज्ञया ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० लक्ष्मीस्तवकवचपूजाकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

किन्तु हे जगदम्बिके ! स्वेच्छामयी, निराकार, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाली और वाणी-मन से परे तुम्हारीस्तुति मैं क्या कर सकता हूँ ? चारों वेदों से परे, संसार सागर को पार करने की एकमात्र कारण, सभी प्रकार के सस्यों और समस्त सम्पदाओं की अधीश्वरी, योगी, योग, ज्ञान, ज्ञानी, वेद और वेदवेत्ताओं की तुम जननी हो, तुम्हारा मैं क्या वर्णन करूँ ॥३०-३२॥ क्योंकि जिसके बिना सारा जगत् निर्बीज एवं निष्फल रहता है जैसे बिना माता के दुधमुंहे बच्चों को सुख नहीं मिलता है ॥३३॥ तुम जगत् की माता हो, प्रसन्न हो जाओ, हम कातरों की रक्षा करो, हम लोग तुम्हारे चरण-कमल के शरणागत हैं ॥३४॥ शक्तिस्वरूप जगन्माता को बार-बार नमस्कार है, ज्ञान देने वाली, बुद्धि देने वाली और सब कुछ देने वाली को नमस्कार है ॥३५॥ भगवान् की भक्ति देने वाली, मुक्ति देने वाली को नमस्कार है। सर्वज्ञान रखने वाली एवं सब कुछ देने वाली महालक्ष्मी को बार-बार नमस्कार है ॥३६॥ कुपुत्र कहीं हैं भी, किन्तु कुमाता कहीं नहीं होती हैं और क्या अपराधी पुत्र को छोड़कर माता कहीं चली जाती है ? ॥३७॥ अतः हे मातः ! दुधमुँहे बच्चे की भाँति मुझे भी तुम दर्शन देने की कृपा करो। हे कृपा-सिन्धो ! हे भक्तवत्सले ! तुम हम पर कृपा करो ॥३८॥ हे वत्स ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पद्मा का शुभावह स्तोत्र बता दिया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक सार, शुभप्रद और सम्पत्तिप्रदायक है ॥३९॥ इस प्रकार इस महापुण्य स्तोत्र का जो पूजाकाल में पाठ करता है, उसके घर को महालक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती हैं ॥४०॥ इतना कहकर श्री भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और उनकी आज्ञा से इन्द्रदेव भी देवों के साथ क्षीरसागर चले गये ॥४१॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में लक्ष्मी का स्तव, कवच तथा पूजा कथन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

---

१ क. सर्वेशस्या०। २ क. गोपीनां चैव गोपानां ज्ञा०। ३ क. मवस्तु।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

इन्द्रश्च गुरुणा सार्धं सुरैः संहृष्टमानसः। जगाम शीघ्रं पद्मायै तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥१॥
कवचं च गले बद्ध्वा सद्रत्नगुटिकान्वितम्। मनसा स्तवनं दिव्यं स्मारं स्मारं पुनः पुनः ॥२॥
ते सर्वे भक्तियुक्ताश्च तुष्टुवुः कमलालयाम्। साश्रुनेत्राश्च दीनाश्च भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥३॥
सा तेषां स्तवनं श्रुत्वा सद्यः साक्षाद्बभूव ह। सहस्रदलपद्मस्था शतचन्द्रसमप्रभा ॥४॥
जगद्व्याप्तं सुप्रभया जगन्मात्रा यया मुने। तानुवाच जगद्धात्री हितं सारं यथोचितम् ॥५॥

महालक्ष्मीरुवाच

वत्सा नेच्छामि वो गेहान्गन्तुं नैवं क्षमाऽधुना। भ्रष्टान्दृष्ट्वा ब्रह्मशापाद्बिभेमि ब्रह्मशापतः ॥६॥
प्राणा मे ब्राह्मणाः सर्वे शश्वत्पुत्राधिकं प्रियाः। विप्रदत्तं च यत्किंचिदुपजीव्यं सदैव च ॥७॥
विप्रा ब्रुवन्तु मां तुष्टा यास्यामि भवदाज्ञया। न मे पूजां ध्रुवं कर्तुं क्षमास्ते च तपस्विनः ॥८॥
गुरुभिर्ब्राह्मणैर्देवैर्भिक्षुभिर्वैष्णवैस्तथा । [1]यदभाव्यं भवेद्दैवात्ते शप्ताः सन्ति तैः सदा ॥९॥

अध्याय २३

लक्ष्मी के निवास योग्य स्थानों का वर्णन

नारायण बोले—इन्द्र अति प्रसन्न होकर गुरु बृहस्पति और देवों के साथ लक्ष्मी को लाने के लिए क्षीरसागर के तट पर गये। वहाँ उत्तम रत्न की गुटिका में कवच रखकर उसे गले में बांधे हुए वे मन से बार-बार दिव्य स्तोत्र का स्मरण करने लगे ॥१-२॥ इस भाँति सभी लोगों ने, जो वहाँ उस समय सजलनेत्र, दीन और भक्ति से कन्धे झुकाये खड़े थे, भक्तिपूर्वक कमला की स्तुति की ॥३॥ अनन्तर उन लोगों की स्तुति सुनकर लक्ष्मी साक्षात् प्रकट हो गयीं जो सहस्र दल वाले कमल पर स्थित और सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण थीं ॥३॥ हे मुने! जिसकी उत्तम प्रभा से सारा जगत् व्याप्त था, उस जगत् की धात्री ने उन देवों से कहना आरम्भ किया, जो हितकर, सारभाग और यथोचित था ॥४-५॥

महालक्ष्मी बोलीं—हे वत्स! मैं तुम लोगों के यहाँ जाना नहीं चाहती। इस समय मैं तुम्हारे घर जाने में असमर्थ हूँ। क्योंकि ब्राह्मण-शाप से भ्रष्ट लोगों को देखकर मैं बहुत भयभीत होती हूँ। ब्राह्मण ही मेरे प्राण हैं और वे निरन्तर मुझे पुत्र से अधिक प्रिय हैं इसलिए ब्राह्मण जो कुछ दे देते हैं वही मेरे जीवन का सहारा रहता है ॥६-७॥ यदि सुप्रसन्न होकर ब्राह्मण आज्ञा प्रदान कर दें तो मैं चल सकती हूँ। अन्यथा मेरी पूजा करने के लिए वे बेचारे अब भी असमर्थ हैं ॥८॥ दैव संयोग से जिसका दुर्भाग्य उपस्थित होता है, उसे गुरु, ब्राह्मण, देव, संन्यासी और वैष्णव द्वारा शाप प्राप्त होता है ॥९॥ यद्यपि भगवान् नारायण समस्त के कारण, सर्वाधीश्वर

---

१ ख. यद्यभाव्यं।

नारायणश्च भगवान्बिभेति ब्रह्मशापतः। सर्वबीजं च भगवान्सर्वेशश्च सनातनः ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्ब्राह्मणा हृष्टमानसाः। आजग्मुः सस्मिताः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥११॥
अङ्गिराश्च प्रचेताश्च क्रतुश्च [1]भृगुरेव च। पुलहश्च पुलस्त्यश्च मरीचिश्चात्रिरेव च ॥१२॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवान्साक्षान्नारायणात्मकः ॥१३॥
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा। दुर्वासाः कश्यपोऽगस्त्यो गौतमः कण्व एव च ॥१४॥
और्वः कात्यायनश्चैव कणादः पाणिनिस्तथा। मार्कण्डेयो लोमशश्च वसिष्ठो भगवान्स्वयम् ॥१५॥
ब्राह्मणा विविधैर्द्रव्यैः पूजयामासुरीश्वरीम्। देवाश्चारण्यनैवेद्यैरुपहारेण भक्तितः ॥१६॥
स्तुत्वा मुनीन्द्रास्तां भक्त्या चक्रुराराधनं मुदा। आगच्छ देवभवनं मर्त्यं च जगदम्बिके ॥१७॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा तानुवाच जगत्प्रसूः। परितुष्टा गामुकी च निर्भया ब्राह्मणाज्ञया ॥१८॥

महालक्ष्मीरुवाच

गृहान्यास्यामि देवानां युष्माकं चाऽऽज्ञया द्विजाः। येषां गेहं न गच्छामि शृणुध्वं भारतेषु च ॥१९॥
स्थिरा पुण्यवतां गेहे सुनीतिपथवेदिनाम्। गृहस्थानां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान् ॥२०॥
यं यं रुष्टो गुरुर्देवो माता तातश्च बान्धवाः। अतिथिः पितृलोकश्च यामि तस्य न मन्दिरम् ॥२१॥
मिथ्यावादी च यः [2]शश्वदनध्यायी च यः सदा। सत्त्वहीनश्च दुःशीलो न गेहं तस्य याम्यहम् ॥२२॥

एवं सनातन हैं, तथापि ब्राह्मण-शाप से वे भी बहुत भयभीत रहते हैं ॥१०॥ हे ब्रह्मन्! उसी बीच अति हर्षित होकर ब्राह्मणों का वृन्द आ गया, जो मन्द हास समेत ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हो रहा था ॥११॥ उनमें अंगिरा, प्रचेता, क्रतु, भृगु, पुलह, पुलस्त्य, मरीचि, अत्रि, सनक, सनन्दन, सनातन, भगवान् सनत्कुमार, साक्षात् नारायणात्मक कपिल, आसुरि, वोढु, पञ्चशिख, दुर्वासा, कश्यप, अगस्त्य, गौतम, कण्व, और्व, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, मार्कण्डेय, लोमश और स्वयं भगवान् वशिष्ठ थे ॥१२-१५॥ उपरान्त ब्राह्मणों ने अनेक भाँति के उपहार से ईश्वरी लक्ष्मी की अर्चना की और देवों ने भी वन्य नैवेद्य और उपहार उन्हें भक्तिपूर्वक समर्पित किये। मुनीन्द्रों ने भक्तिपूर्वक स्तुति-आराधना की और सुप्रसन्न होकर कहा—'हे जगदम्बिके! देवों के घर और मनुष्यों के यहाँ आने की कृपा करो।' उनकी ऐसी बातें सुनकर जगज्जननी महालक्ष्मी ने ब्राह्मणों की आज्ञा से निर्भय एवं अति प्रसन्न होकर भूमण्डल में आने के विचार से उन ब्राह्मणों से कहा ॥१६-१८॥

महालक्ष्मी बोलीं—हे द्विजवृन्द! तुम लोगों की आज्ञा से मैं देवों के घर जा रही हूँ। किन्तु भारत में जिन लोगों के यहाँ मैं नहीं जाऊँगी, वह तुम्हें बता रही हूँ, सुनो ॥१९॥

पुण्यवानों के घर मैं सुस्थिर होकर निवास करूँगी और उत्तम नीति-मार्ग से चलने वाले गृहस्थ एवं राजाओं के यहाँ रहकर पुत्र की भाँति उनका पालन करूँगी ॥२०॥ किन्तु गुरु, देवता, माता-पिता, बन्धुगण, अतिथि और पितर लोग जिस पर रुष्ट रहेंगे उसके घर कभी नहीं जाऊँगी ॥२१॥ जो निरन्तर मिथ्या भाषण करता है, जो कभी अध्ययन नहीं करता, सत्त्वहीन और दुष्ट स्वभाव का है, उसके घर नहीं जाती हूँ ॥२२॥ सत्य-

---

१ क. ०गुनन्दनः। २ क. ०श्वन्नास्तीति वाचकः सदा।

सत्यहीनः स्थाप्यहारी मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः। विश्वासघ्नः कृतघ्नो यो यामि तस्य न मन्दिरम् ॥२३॥
चिन्ताग्रस्तो भयग्रस्तः शत्रुग्रस्तोऽतिपातकी। ऋणग्रस्तोऽतिकृपणो न गेहं यामि पापिनाम् ॥२४॥
दीक्षाहीनश्च शोकार्तो मन्दधीः स्त्रीजितः सदा। न याम्यपि कदा गेहं पुंश्चल्याः पतिपुत्रयोः ॥२५॥
पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं यो भुङ्क्ते कामदः सदा। शूद्रान्नभोजी तद्याजी तद्गेहं नैव याम्यहम् ॥२६॥
यो दुर्वाक्कलहाविष्टः कलिः शश्वद्यदालये। स्त्री प्रधाना गृहे यस्य यामि तस्य न मन्दिरम् ॥२७॥
यत्र नास्ति हरेः पूजा तदीयगुणकीर्तनम्। नोत्सुकस्तत्प्रशंसायां यामि० ॥२८॥
[1]कन्यान्नवेदविक्रेता नरघाती च हिंसकः। नरकागारसदृशं यामि० ॥२९॥
मातरं पितरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरोः[2] सुताम्। अनाथां भगिनीं कन्यामनन्याश्रयबान्धवान् ॥३०॥
कार्पण्याद्यो न पुष्णाति संचयं कुरुते सदा। तद्गेहान्नरकागारान्यामि तान्न मुनीश्वराः ॥३१॥
दशनं वसनं यस्य समलं रूक्षमस्तकम्। विकृतौ ग्रासहासौ[3] च यामि तस्य न मन्दिरम् ॥३२॥
मूत्रं पुरीषमुत्सृज्य यस्तत्पश्यति मन्दधीः। यः शेते स्निग्धपादेन यामि० ॥३३॥
अधौतपादशायी यो नग्नः शेतेऽतिनिद्रितः। संध्याशायी दिवाशायी यामि० ॥३४॥

रहित, धरोहर के अपहर्ता, झूठी गवाही देने वाले, विश्वासघाती और कृतघ्न के घर नहीं जाती हूँ ॥२३॥ चिन्ताग्रस्त, भयभीत, शत्रु से घिरे, अतिपापी, ऋणी एवं अतिकृपण इन पापियों के यहाँ नहीं जाती हूँ ॥२४॥ दीक्षाहीन, शोकाकुल, मूर्ख, स्त्रीपराजित एवं पुंश्चली स्त्री के पति-पुत्र के यहाँ नहीं जाती हूँ ॥२५॥ जो सदा पुंश्चली का अन्न खाता है, जो पति-पुत्रहीना विधवा का अन्न खाता है, जो शूद्रान्न खाता है और जो शूद्र का यज्ञ कराता है, उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ॥२६॥ जो कठोर वचन बोलता है, झगड़ालू है, जिसके यहाँ कलि का निरन्तर निवास रहता है और जिसके घर में स्त्री प्रधान है उसके घर नहीं जाती हूँ ॥२७॥ जहाँ भगवान् की पूजा, उनके नाम-गुण का कीर्तन और उनकी प्रशंसा करने में लोग उत्सुक नहीं रहते हैं उसके घर नहीं जाती हूँ ॥२८॥ कन्या, अन्न, एवं वेद का विक्रेता, नरघाती तथा हिंसक के और नरककुण्ड के समान घर में मैं नहीं जाती हूँ ॥२९॥ हे मुनीश्वरवृन्द! माता, पिता, स्त्री, गुरुपत्नी, गुरु की, पुत्री अनाथ भगिनी, कन्या एवं आश्रयहीन बान्धवों का जो कृपणतावश पालन-पोषण नहीं करता है केवल धन-सञ्चय ही करता रहता है, उसके नरकागार समान घरों में मैं नहीं जाती हूँ ॥३०-३१॥ जिसके दाँत-वस्त्र मैले रहते हैं, मस्तक रूखा रहता है, खाते समय और हँसते समय जिसका मुख विकृत हो जाता है, उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३२॥ जो मूर्ख मलमूत्र का त्याग कर उसे पुनः देखता है, और जो गीले पैर शयन करता है, उसके यहाँ मैं नहीं जाती हूँ ॥३३॥ बिना चरण धोये शयन करने वाले और नग्न होकर अत्यन्त शयन करने वाले तथा सन्ध्या समय एवं दिन में शयन करने वाले के घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३४॥

---

१ क. ०न्यात्मवे०। २ ख. गुरुं सुतम्। ३. क. ज्ञान०।

मूर्ध्नि तैलं पुरो दत्त्वा योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत् । ददाति पश्चाद्गात्रे वा यामि० ॥३५॥
दत्त्वा तैलं मूर्ध्नि गात्रे विण्मूत्रं समुत्सृजेत् । प्रणमेदाहरेत्पुष्पं यामि० ॥३६॥
तृणं छिनत्ति नखरैर्नखरैर्विलिखेन्महीम् । गात्रे पादे मलो यस्य यामि० ॥३७॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं सुरस्य च । यो हरेज्ज्ञानशीलश्च[1] यामि० ॥३८॥
यत्कर्म दक्षिणाहीनं कुरुते मूढधीः शठः । स पापी पुण्यहीनश्च यामि० ॥३९॥
मन्त्रविद्योपजीवी च ग्रामयाजी चिकित्सकः । सूपकृद्देवलश्चैव यामि० ॥४०॥
विवाहं धर्मकार्यं वा यो निहन्ति च कोपतः । दिवा मैथुनकारी यो यामि० ॥४१॥
इत्युक्त्वा सा महालक्ष्मीरन्तर्धानं जगाम ह । ददौ दृष्टिं च देवानां गृहे मर्त्ये च नारद ॥४२॥
तां प्रणम्य सुराः सर्वे मुनयश्च मुदान्विताः । प्रजग्मुः स्वालयं शीघ्रं शत्रुत्यक्तं सुहृद्युतम् ॥४३॥
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे बभूवुः पुष्पवृष्टयः । प्रापुर्देवाः स्वराज्यं च निश्चलां कमलां मुने ॥४४॥
इत्येवं कथितं वत्स लक्ष्मीचरितमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणपतेर्गजास्यत्वकारणलक्ष्मीब्राह्मण-विरोधादिलक्ष्मीचरित्रकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

जो पहले शिर में तेल लगाकर पश्चात् अन्य अंगों का तेल से मर्दन करते हैं या समस्त शरीर में तेल लगाते हैं उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३५॥ जो शिर या शरीर में तेल लगाकर मूत्र-मल का त्याग करता है तथा प्रणाम करता हैं और पुष्प तोड़ता है, मैं उसके घर नहीं जाती हूँ ॥३६॥ नखों से तृण तोड़ने और भूमि में नख द्वारा रेखा करने तथा जिसका शरीर और चरण मैला-कुचैला रहता है, उसके घर नहीं जाती हूँ ॥३७॥ जो ज्ञानशील होकर अपनी या (दूसरे) की दी हुई ब्राह्मण-वृत्ति (जीविका) का तथा देव-सम्पत्ति का अपहरण करता है, उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३८॥ जो मूर्खबुद्धि शठ दक्षिणाहीन कर्म करता है, उस पुण्यहीन पापी के घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३९॥ मंत्रविद्या से जीविका निर्वाह करने वाले, गांव-गाव यज्ञ कराने वाले, वैद्य, भण्डारी, और [illegible] देवली के घर [illegible] ॥४०॥ पुरोहित-कोपवश विवाह धर्म-सम्पादी को अपहरण करता है, उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३८॥ जो मूर्खबुद्धि शठ दक्षिणाहीन कर्म करता है, उस पुण्यहीन पापी के घर मैं [illegible] ॥४१॥ हे नारद! इतना कहकर महालक्ष्मी अन्तर्हित हो गयीं और देवों तथा मनुष्यों के घर पर दृष्टि डालने लगीं ॥४२॥ अनन्तर उन्हें प्रणाम करके सभी देवों और महर्षियों ने सुप्रसन्न होकर अपने अपने घरों को शीघ्र प्रस्थान किया, जो उस समय शत्रुओं से रहित एवं मित्र-वर्गों से युक्त था ॥४३॥ हे मुने! देवों ने अपना राज्य और निश्चल लक्ष्मी की प्राप्ति करके स्वर्ग में नगाड़े बजवाये और पुष्पों की वर्षा की ॥४४॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने लक्ष्मी का उत्तम चरित तुम्हें सुना दिया, जो सुखद, मोक्षदायक एवं सारभाग है। अब और क्या सुनना चाहते हो ॥४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में गणपति के गजमुख होने का कारण और लक्ष्मी-ब्राह्मण-विरोधादिरूप लक्ष्मी-चरित-कथन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

---

१ क, ०नहीनश्च।

चतुर्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग हरेरंशसमुद्भव । सर्वं श्रुतं त्वत्प्रसादाद्गणेशचरितं शुभम् ॥१॥
दन्तद्वययुतं वक्त्रं गजराजस्य बालके । विष्णुना योजितं ब्रह्मन्नेकदन्तः कथं शिशुः ॥२॥
कुतो गतोऽस्य दन्तोऽन्यस्तद्भवान्वक्तुमर्हति । सर्वेश्वरस्त्वं सर्वज्ञः कृपावान्भक्तवत्सलः ॥३॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्मेराननसरोरुहः । एकदन्तस्य चरितं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥४॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । एकदन्तस्य चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥५॥
एकदा कार्तवीर्यश्च जगाम मृगयां मुने । मृगान्निहत्य बहुलान्परिश्रान्तो बभूव सः ॥६॥
निशामुखे दिनेऽतीते तत्र तस्थौ वने नृपः । जमदग्न्याश्रमाभ्याशे चोपोष्यानीकसंयुतः ॥७॥
प्रातः सरोवरे राजा स्नातः शुचिरलंकृतः । दत्तात्रयेण दत्तं च ह्यजपद्भक्तितो मनुम् ॥८॥
मुनिर्ददर्श राजानं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम् । प्रीत्याऽऽदरेण मृदुलं पप्रच्छ कुशलं मुनिः ॥९॥

अध्याय २४

गणेश के एकदान्त होने का कारण

नारद बोले—हे नारायण, हे महाभाग ! आप भगवान् के अंश से उत्पन्न हैं आप की कृपा से गणेश जी का समस्त शुभ चरित मैंने सुन लिया ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! गजराज के दो दाँतों से युक्त मुख को, भगवान् ने बालक (गणेश) के धड़ पर जोड़ा था, किन्तु वह बालक एकदन्त कैसे हो गया, उसका दूसरा दाँत कहाँ चला गया (क्या हो गया) बताने की कृपा करें, क्योंकि आप सर्वेश्वर, समस्त के ज्ञाता, कृपालु और भक्तवत्सल हैं ॥२-३॥

सूत बोले—नारद की ऐसी बात सुनकर मुसकराते हुए मुखकमल वाले भगवान् ने एकदन्त का चरित कहना आरम्भ किया ॥४॥

नारायण बोले—हे नारद ! मैं तुम्हें एकदन्त का चरित सुना रहा हूँ, जो प्राचीन इतिहास है और समस्त मंगलों का मंगल है ॥५॥

हे मुने ! एक बार राजा कार्तवीर्य मृगया (शिकार) खेलने के लिए गये। वहाँ अनेक मृगों का शिकार करने से वे बहुत श्रान्त हो गये और दिन भी समाप्त हो गया। सायंकाल देखकर राजा जंगल में वहीं सेना समेत ठहर गये, जहाँ समीप ही जमदग्नि का आश्रम था, किन्तु न जानने के कारण राजा को उस रात्रि उपवास करना पड़ा ॥६-७॥ प्रातःकाल सरोवर में राजा ने स्नान किया, तब पवित्र होकर अलंकार धारण किया और दत्तात्रेय के द्वारा प्राप्त मंत्र का भक्तिपूर्वक जप किया ॥८॥ अनन्तर मुनि ने राजा को देखा कि इनके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये हैं, उन्होंने सादर प्रेमपूर्वक कोमलवाणी से उनका कुशल-समाचार

ननाम संभ्रमाद्राजा मुनिं सूर्यसमप्रभम्। स च तस्मै ददौ प्रीत्या प्रणताय शुभाशिषः ॥१०॥
वृत्तान्तं कथयामास राजा स्वानशनादिकम् । संभ्रमेणैव मुनिना त्रस्तो राजा निमन्त्रितः ॥११॥
विज्ञाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्वालयं मुदा। एतद्वृत्तं कामधेनुं कथयामास भीतवत् ॥१२॥
उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते। जगद्भोजयितुं शक्तस्त्वं मया को नृपो मुने ॥१३॥
राजभोजनयोग्यार्हं यद्यद्द्रव्यं प्रयाचसे। सर्वं तुभ्यं प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१४॥
सौवर्णानि च रौप्याणि पात्राणि विविधानि च। भोजनार्हाण्यसंख्यानि पाकपात्राणि यानि च ॥१५॥
शुद्धरत्नविकाराणि पानपात्राणि यानि च। पात्राणि स्वादुपूर्णानि ददौ मुनये च सा ॥१६॥
नानाविधानि स्वादूनि परिपक्वफलानि च। पनसाम्रश्रीफलानि नारिकेलादिकानि च ॥१७॥
राशीभूतान्यसंख्यानि स्वादुलड्डुकराशयः । यवगोधूमचूर्णानां भक्ष्याणि विविधानि च ॥१८॥
पक्वान्नानां पर्वतांश्च परमान्नस्य कन्दरान् । दुग्धानां च घृतानां च नदीर्दध्नां ददौ मुदा ॥१९॥
शर्कराणां तथा राशिं मोदकानां च पर्वतान्। पृथुकानां सुशीलानां पर्वतान्ददौ मुदा ॥२०॥
ताम्बूलं च ददौ पूर्णं कर्पूरादिसुवासितम्। नृपयोग्यं कौतुकाच्च सुन्दरं वस्त्रभूषणम् ॥२१॥
मुनिः संभृतसंभारो दत्त्वा द्रव्यं मनोहरम् । भोजयामास राजानं ससैन्यमपि लीलया ॥२२॥

पूछा ॥९॥ राजा ने भी सहसा मुनि को नमस्कार किया, जो सूर्य के समान कान्तिपूर्ण थे, और मुनि ने विनय-विनम्र राजा को सप्रेम शुभाशिष प्रदान किया ॥१०॥ अनन्तर राजा ने अपना रात्रि का अनशन आदि सभी वृत्तान्त उनसे कहा, जिससे मुनि ने राजा को त्रस्त देखकर तुरन्त अपने यहां निमन्त्रित किया ॥११॥ मुनिश्रेष्ठ राजा से कहकर प्रसन्नता से अपने कुटीर में आये और भयभीत की भाँति उन्होंने सारा वृत्तान्त कामधेनु से कह सुनाया ॥१२॥ उसने भयभीत मुनि से कहा—हे मुने! मेरे रहते तुम्हें भय क्या है? तुम मेरे द्वारा समस्त संसार को भोजन कराने में समर्थ हो, एक राजा की क्या बात है ॥१३॥ राजभोजन के योग्य जिस-जिस वस्तु की याचना करोगे, मैं उन सभी वस्तुओं को तुम्हें दूँगी, जो तीनों लोकों में अतिदुर्लभ हैं ॥१४॥ सोने-चांदी के विभिन्न प्रकार के भोजनपात्र, असंख्य पाक-पात्र, शुद्ध रत्न के बने पान-पात्र तथा अन्य स्वादु वस्तु से पूर्ण पात्रों को उसने प्रदान किया। अनेक भाँति के पके और स्वादिष्ठ फल, कटहल, आम, श्रीफल, नारियल आदि सुस्वादु लड्डुओं की अनेक राशियां, जवा-गेहूँ के आटे के बने विविध भक्ष्य पदार्थ, पकवानों के पर्वत, परामान्नों की कन्दरायें दूध, दही और घी की नदियाँ प्रदान कीं। शक्करों की राशियाँ, लड्डुओं के पर्वत तथा उत्तम साठीधान के चिपिटान्न (चिउरा) के पर्वत प्रदान किये। कर्पूरादि सुवासित ताम्बूल समर्पित किया। इस प्रकार महान् सम्भार से युक्त होकर मुनि ने राजा को कौतुक वश उसके योग्य सुन्दर वस्त्र, आभूषण एवं उत्तम द्रव्य देकर सेना समेत उन्हें भोजन कराया ॥१५-२२॥

---

१ क. लक्ष्मीसमां।

यद्यत्सुदुर्लभं वस्तु परिपूर्णं नृपेश्वरः । जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा पात्राण्युवाच ह ॥२३॥

राजोवाच

द्रव्याण्येतानि सचिव दुर्लभान्यश्रुतानि च। ममासाध्यानि सहसा क्वऽऽगतान्यवलोकय ॥२४॥
नृपाज्ञया च सचिवः सर्वं दृष्ट्वा मुनेर्गृहम्। राजानं कथयामास वृत्तान्तं महदद्भुतम् ॥२५॥

सचिव उवाच

दृष्टं सर्वं महाराज निबोध मुनिमन्दिरम्। वह्निकुण्डं यज्ञकाष्ठकुशपुष्पफलान्वितम् ॥२६॥
कृष्णचर्मस्रुवस्रुग्भिः शिष्यसंघैश्च संकुलम् । तैजसाधारसस्यादिसर्वसंपद्विवर्जितम् ॥२७॥
वृक्षचर्मपरीधाना दृष्टाः सर्वे जटाधराः । गृहैकदेशे दृष्टा सा कपिलैका मनोहरा ॥
चार्वङ्गी चन्द्रवर्णाभा रक्तपङ्कजलोचना ॥२८॥
ज्वलन्ती तेजसा तत्र पूर्णचन्द्रसमप्रभा। सर्वसंपद्गुणाधारा साक्षादिव हरिप्रिया ॥२९॥
इत्येवं बोधितो राजा दुर्बुद्धिः सचिवाज्ञया । मुनिं ययाचे तां धेनुं निबद्धः कालपाशतः ॥३०॥
किं वा पुण्यं च का बुद्धि कः कालः सर्वतो बली। पुण्यवान्बुद्धिमान्दैवाद्राजेन्द्रोऽयाचत द्विजम् ॥३१॥
पुण्यात्प्रजायते कर्म पुण्यरूपं च भारते। पापात्प्रजायते कर्म पापरूपं भयावहम् ॥३२॥
पुण्यात्कृत्वा स्वर्गभोगं जन्म पुण्यस्थले नृणाम्। पापाद्भुक्त्वा च नरकं कुत्सितं जन्म जीविनाम् ॥३३॥

राजा को वहाँ अति दुर्लभ वस्तुएँ पूर्ण रूप से प्राप्त हुईं। पात्रों को देखकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ और बोला ॥२३॥

राजा ने कहा—हे सचिव! ये वस्तुएँ जो दुर्लभ ही नहीं, अपितु अश्रुत भी हैं, मेरे लिए असाध्य हैं। देखो! ये सहसा कहाँ से आ गयीं ॥२४॥ मंत्री ने राजा की आज्ञा से मुनि का सारा घर देखा और राजा से महान् अद्भुत समाचार कह सुनाया ॥२५॥

सचिव बोला—हे महाराज! सुनिये! मैंने मुनि का समस्त घर—अग्नि कुण्ड, यज्ञ-काष्ठ, कुश, फूल, फल, काले मृग के चर्म, स्रुव तथा शिष्य वृन्द से व्याप्त, अन्याधार (वेदी), सस्य आदि से युक्त तथा सकल सम्पत्ति से रहित देखा ॥२६-२७॥ सभी लोग वृक्ष की छाल पहने, जटाधारी एवं तपस्वी हैं। घर में एक ओर एक मनोहर कपिला गौ बँधी देखी जो सुन्दर अंगों वाली, चन्द्रमा के समान कांति वाली, रक्त कमल की भाँति नेत्रों वाली एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रभा से समन्वित है। वह तेज से जल रही है और भगवान् की प्रेयसी साक्षात् लक्ष्मी की भाँति वह समस्त सम्पत्ति और गुणों का आधार है ॥२८-२९॥ इस प्रकार उस दुर्बुद्धि राजा को मंत्री ने सब कुछ बता दिया। पश्चात् उस राजा ने कालपाश से आबद्ध होकर मुनि से उसी गौ की याचना की। क्या पुण्य, क्या बुद्धि और सबसे बली काल क्या! दैवसंयोगवश पुण्यवान् और बुद्धिमान् होते हुए भी उस महाराज ने ब्राह्मण से याचना की। भारत में पुण्य द्वारा पुण्य कर्म की उत्पत्ति होती है और पाप द्वारा भीषण पाप कर्म की। पुण्य करने से मनुष्यों को स्वर्ग का भोग प्राप्त होता है और पुण्य स्थान में जन्म होता है। उसी भाँति पाप करने से प्राणियों को नरक-भोग और निन्दित जन्म प्राप्त होते हैं ॥३०-३३॥

जीविनां निष्कृतिर्नास्ति स्थिते कर्मणि नारद। तेन कुर्वन्ति सन्तश्च संततं कर्मणः क्षयम् ॥३४॥
सा विद्या ततपो ज्ञानं स गुरुः स च बान्धवः। सा माता स पिता पुत्रस्तत्क्षयं कारयेत्तु यः ॥३५॥
जीविनां दारुणो रोगः कर्मभोगः शुभाशुभः। भक्तिवैद्यस्तं निहन्ति कृष्णभक्तिरसायनात् ॥३६॥
माया ददाति तां भक्तिं प्रतिजन्मनि सेविता। परितुष्टा जगद्धात्री भक्तेभ्यो बुद्धिदायिनी ॥३७॥
परा परमभक्ताय माया यस्मै ददाति च। मायां तस्मै मोहयितुं न विवेकं कदाचन ॥३८॥
मायाविमोहितो राजा मुनिमानीय यत्नतः। उवाच विनया युक्त्या कृताञ्जलिपुटो मुदा ॥३९॥

राजोवाच

देहि भिक्षां कल्पतरो कामधेनुं च कामदाम्। मह्यं भक्ताय भक्तेश भक्तानुग्रहकारक ॥४०॥
युष्मद्विधानां दातॄणामदेयं नास्ति भारते। दधीचिर्देवताभ्यश्च ददौ स्वास्थि पुरा श्रुतम् ॥४१॥
भ्रूभङ्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन। समूहं कामधेनूनां स्रष्टुं शक्तोऽसि भारते ॥४२॥

मुनिरुवाच

अहो व्यतिक्रमं राजन्ब्रवीषि शठ वञ्चक। दानं दास्यामि विप्रोऽहं क्षत्रियाय[1] कथं नृप ॥४३॥
कृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना। कामधेनुरियं यज्ञे न देया प्राणतः प्रिया ॥४४॥

हे नारद! इस प्रकार कर्म में फँसे रहने पर जीवों का निकलना कठिन हो जाता है। इसीलिए सन्त लोग निरन्तर कर्म का क्षय करते रहते हैं, क्योंकि वही विद्या है, वही तप है, वही ज्ञान है, वही गुरु है, वही बान्धव है, वही माता-पिता और वही पुत्र है, जो कर्म के नाश होने में सहयोग प्रदान करे। जीवों के लिए शुभाशुभ कर्मों का भोग भीषण रोग है। अतः भक्त वैद्य भगवान् कृष्ण की भक्ति रूपी रसायन द्वारा उसी कर्म का नाश करता है। प्रत्येक जन्म में सेवा करने पर माया (दुर्गा) ही भक्ति प्रदान करती है और वही जगत् की धात्री अति सन्तुष्ट होने पर भक्तों को बुद्धि देती है। एवं वही परा माया जिस परम भक्त को मोहित करने के लिए माया प्रदान करती है, उसे विवेक कभी नहीं देती। इसीलिए मायामोहित होकर राजा ने मुनि के समीप आकर भक्तिपूर्वक विनय से हाथ जोड़कर यत्न से कहा ॥३४-३९॥

राजा बोला—हे कल्पतरो! मेरी कामनाओं को सफल करने वाली यह कामधेनु मुझे भिक्षा रूप में देने की कृपा करो। हे भक्तेश! आप भक्तों पर अनुग्रह करते हैं और मैं आप का भक्त हूँ ॥४०॥ भारत में आप के समान दाताओं के लिए कोई वस्तु अदेय नहीं है; क्योंकि यह सुना जाता है कि दधीचि ने पूर्वकाल में देवों को अपनी अस्थि प्रदान की थी। हे तपोधन! आप तपोराशि हैं, भारत में आप भौंह टेढ़ी करने की लीला मात्र से कामधेनुओं का समूह सर्जन करने में समर्थ हैं ॥४१-४२॥

मुनि बोले—हे राजन्! यह बड़ा व्यतिक्रम (उलटा) है, तुम शठ और ठग की भाँति कह रहे हो। हे नृप! भला मैं ब्राह्मण होकर क्षत्रिय को दान कैसे दे सकूंगा ॥४३॥ गोलोक में परमात्मा कृष्ण ने यज्ञ में यह प्राणों से भी अधिक प्रिय कामधेनु ब्रह्मा को दी थी। यह देने योग्य नहीं है ॥४४॥ हे

---

१ क. ० य नृपाधम।

ब्रह्मणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप। मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी मम ॥४५॥
गोलोकजा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये । लीलामात्रात्कथमहं कपिलां स्रष्टुमीश्वरः ॥४६॥
नाहं रे हालिको मूढ स्तुत्या नोत्थापितो बुधः। क्षणेन भस्मसात्कर्तुं क्षमोऽहमतिथिं विना ॥४७॥
गृहं गच्छ गृहं गच्छ मे कोपं नैव वर्धय। पुत्रदारादिकं पश्य दैवबाधित पामर ॥४८॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप स नराधिपः। नत्वा मुनिं सैन्यमध्यं प्रययौ विधिबाधितः ॥४९॥
गत्वा सैन्यसकाशं स कोपप्रस्फुरिताधरः। किंकरान्प्रेषयामास धेनुमानयितुं बलात् ॥५०॥
कपिलासंनिधिं गत्वा रुरोद मुनिपुंगवः। कथयामास वृत्तान्तं शोकेन हतचेतनः ॥५१॥
रुदन्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा सुरभिस्तमुवाच ह। साक्षाल्लक्ष्मीस्वरूपा सा भक्तानुग्रहकारिका ॥५२॥

सुरभिरुवाच

इन्द्रो वा हालिको वाऽपि वस्तु स्वं दातुमीश्वरः। शास्ता पालयिता दाता स्ववस्तूनां च संततम् ॥५३॥
स्वेच्छया चेन्नृपेन्द्राय मां ददासि तपोधन। तेन सार्धं गमिष्यामि स्वेच्छया च तवाऽऽज्ञया ॥५४॥
अथवा न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात्। ततो दत्तेन सैन्येन दूरी कुरु नृपं द्विषम् ॥५५॥
कथं रोदिषि सर्वज्ञ मायामोहितचेतनः । संयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो न चाऽऽत्मनः ॥५६॥

भूमिपालक ! पुनः ब्रह्मा ने अपने प्रिय पुत्र भृगु को दिया और भृगु ने इस कपिला को मुझे दिया है, इसलिए यह हमारी पैतृक सम्पत्ति है ॥४५॥ गोलोक में उत्पन्न होने वाली यह कामधेनु तीनों लोकों में अति दुर्लभ है अतः ऐसी कपिला की सृष्टि मैं लीलामात्र से कैसे कर सकता हूँ ॥४६॥ रे मूढ़ ! मैं हलवाहा नहीं हूँ और स्तुति (प्रशंसा) करने से पण्डित लोग कभी उत्संग में नहीं आते हैं। हां, यदि तुम अतिथि न होते तो मैं क्षणमात्र में भस्म कर सकता था ॥४७॥ इसलिए तुम घर जाओ (फिर कहता हूँ) घर चले जाओ। मेरे क्रोध को न बढ़ाओ। हे पामर (नीच) ! तू दैव (दुर्भाग्य) का मारा है अतः घर जाकर स्त्री-पुत्र को देख ॥४८॥ मुनि की ऐसी बातें सुनकर राजा क्रुद्ध हो गया और दैवदुर्भाग्य वश मुनि को नमस्कार करके सेनाओं के पास चला गया ॥४९॥ वहाँ पहुँचने पर उसके होंठ क्रोध से फड़कने लगे। उसने बलात् गौ लाने के लिए अपने सेवकों को भेजा ॥५०॥ उधर मुनिश्रेष्ठ (जमदग्नि) ने गौ के पास जाकर रोदन किया और शोकाकुल होकर सभी वृत्तान्त उससे कह सुनाया ॥५१॥ ब्राह्मण को रोदन करते देखकर साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप एवं भक्तों पर अनुग्रह करने वाली सुरभी ने उनसे कहा ॥५२॥

सुरभी बोली—इन्द्र हों या हलवाहा हो, वह अपनी वस्तु देने के लिए अधिकारी है अतः अपनी वस्तु का वह शासन, पालन, दान निरन्तर कर सकता है। अतः हे तपोधन ! यदि तुम अपनी इच्छा से मुझे महाराज को सौंप रहे हो, तो तुम्हारी आज्ञावश मैं स्वेच्छया उसके साथ जाने को तैयार हूँ ॥५३-५४॥ किन्तु, यदि तुम नहीं देना चाहते हो तो मैं तुम्हारे घर से कभी नहीं जाऊँगी। मेरी दी हुई सेनाओं द्वारा उस शत्रु राजा को दूर भगा दो ॥५५॥ हे सर्वज्ञ ! तुम रोदन क्यों करते हो ? तुम्हारा चित्त मायामोहित हो गया है क्योंकि (किसी का) संयोग-वियोग

त्वं वा को मे तवाहं का संबन्धः कालयोजितः । याववेव हि संबन्धो ममत्वं तावदेव हि ॥५७॥
मनो जानाति यद्द्रव्यमात्मीयं चेति केवलम् । दुःखं च तस्य विच्छेदाद्यावत्स्वत्वं च तत्र वै ॥५८॥
इत्युक्त्वा कामधेनुश्च सुषाव विविधानि च । शस्त्राण्यस्त्राणि सैन्यानि सूर्यतुल्यप्रभाणि च ॥५९॥
निर्गताः कपिलावक्त्रात्त्रिकोट्यः खड्गधारिणाम् । विनिःसृता नासिकायाः शूलिनः पञ्चकोटयः ॥६०॥
विनिःसृता लोचनाभ्यां शतकोटिधनुर्धराः । कपालान्निःसृता वीरास्त्रिकोट्यो दण्डधारिणाम् ॥६१॥
वक्षःस्थलान्निःसृताश्च त्रिकोट्यः शक्तिधारिणाम् । शतकोट्यो गदाहस्ताः पृष्ठदेशाद्विनिर्गताः ॥६२॥
विनिःसृताः पादतलाद्वाद्यभाण्डाः सहस्रशः । जङ्घादेशान्निःसृताश्च त्रिकोट्यो राजपुत्रकाः ॥६३॥
विनिर्गता गुह्यदेशात्त्रिकोटिम्लेच्छजातयः । दत्त्वा सैन्यानि कपिला मुनये चाभयं ददौ ॥६४॥
युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न याहीत्युवाच ह । मुनिः संभृतसंभारैर्हर्षयुक्तो बभूव ह ॥६५॥
नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृपं सर्वमुवाच ह । कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम् ॥६६॥
तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्तः कातरमानसः । दूतान्संप्रेष्य सैन्यानि चाऽऽजहार स्वदेशतः ॥६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० एकदन्ततत्वहेतुप्रश्नप्रसङ्गे
जमदग्निकार्तवीर्ययुद्धारम्भवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

समय आने पर होता है, अपने वश से नहीं। तुम मेरे कौन हो और मैं तुम्हारी कौन हूँ। किन्तु कालवश हमारा तुम्हारा सम्बन्ध स्थापित हो गया है क्योंकि जब तक सम्बन्ध रहता है ममत्व भी तभी तक रहता है ॥५६-५७॥ मन जिस वस्तु को जानता है कि यह मेरी है और जब तक उस पर अपना स्वत्व रखता है तभी तक उसे उसके वियोग का दुःख होता है ॥५८॥ इतना कहकर उस कामधेनु ने विभिन्न प्रकार के शस्त्र अस्त्र और सूर्य के समान कान्ति-पूर्ण सेनायें उत्पन्न कीं ॥५९॥ अनन्तर उस कपिला गौ के मुख से तीन करोड़ खड्गधारी, नासिका से पाँच करोड़ शूलधारी, आँखों से सौ करोड़ धनुर्धारी, कपाल से तीन करोड़ दण्डधारी वीर, वक्षःस्थल से तीन करोड़ शक्तिधारी, पृष्ठभाग से सौ करोड़ गदाधारी, तलवे से सहस्रों वाद्य बजाने वाले, जंघाओं से तीन करोड़ राजपुत्र और गुह्य स्थान से तीन करोड़ म्लेच्छ जाति वाले सैनिक निकले। इस भाँति उस कपिला गौ ने सेनाओं को समर्पित कर मुनि को अभय प्रदान किया और कहा—ये सेनायें वहाँ जाकर युद्ध करेंगी, तुम मत जाना। इस प्रकार सम्भार से युक्त होने पर मुनि को महान् हर्ष हुआ और राजा के भेजे हुए दूतों ने लौटकर राजा से यह सब कपिला-सेना का वृत्तान्त कह सुनाया। जिससे अपनी पराजय की सम्भावना सुनकर वह राजा घबराया और दूतों को भेजकर अपने देश से और अधिक सेनाओं को बुलाया ॥६०-६७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में एकदन्त के प्रश्न-प्रसंग में जमदग्नि-कार्तवीर्य्य-युद्धारम्भ-वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिं स्मरन्कार्तवीर्यो हृदयेन विदूयता। दूतं प्रस्थापयामास कुपितो मुनिसंनिधिम् ॥१॥
युद्धं देहि मुनिश्रेष्ठ किंवा धेनुं च वाञ्छिताम्। महच्चं भृत्यायातिथये सुविचार्य यथोचितम् ॥२॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। हितं सत्यं नीतिसारं सर्वं दूतमुवाच ह ॥३॥

मुनिरुवाच

दृष्टो नृपो निराहारः समानीतो मया गृहम्। विविधं च यथाशक्त्या भोजितश्च यथोचितम् ॥४॥
कपिलां याचते राजा मम प्राणाधिकां बलात्। तां दातुमक्षमो दूत युद्धं दास्यामि निश्चितम् ॥५॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा दूतः सर्वमुवाच ह। नृपेन्द्रं च सभामध्ये संनाहैः संयुतं भिया ॥६॥
मुनिश्च कपिलामाह सांप्रतं किं करोम्यहम्। कर्णधारं विना नौका तथा सैन्यं विना मया ॥७॥
कपिला च ददौ तस्मै शस्त्राणि विविधानि च। युद्धशास्त्रोपदेशं च संधानं चौपयोगिकम् ॥८॥
जयो भवतु ते विप्र युद्धे जेष्यसि निश्चितम्। तव मृत्युर्न भविता सत्यमस्त्रं विना मुने ॥९॥

अध्याय २५

जमदग्नि और कार्तवीर्यार्जुन के युद्ध का वर्णन

नारायण बोले—राजा कार्तवीर्य ने हार्दिक दुःख में भगवान् का स्मरण करते हुए क्रोधवश मुनि के समीप अपना दूत भेजा ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ! मैं आपका सेवक हूँ एवं अतिथि हूँ, अतः भली भाँति विचार द्वारा निश्चित करके मुझे युद्ध या अभिलषित धेनु जो उचित हो, देने की कृपा करें ॥२॥ दूत की बातें सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने हँसकर दूत से कहा, जो हितकर, सत्य और नीति का सार भाग था ॥३॥

मुनि बोले—मैं राजा को उपवास किये देख कर अपने घर लाया और यथाशक्ति विविध प्रकार का यथोचित भोजन कराया ॥४॥ हे दूत! अब वही राजा बलात् मेरी कपिला गौ माँग रहा है, जो मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। इसलिए मैं उसे देने में असमर्थ हूँ, युद्ध ही करूँगा, यही मेरा निश्चय है ॥५॥ मुनि की बातें सुनकर दूत ने सभा में कवचयुक्त राजा से डरते हुए सब कुछ कह दिया ॥६॥ अनन्तर मुनि ने उस गौ से कहा—'सम्प्रति मैं क्या करूँ? क्योंकि कर्णधार (नाव चलाने वाला मल्लाह) बिना नौका की भाँति मेरे बिना सेना की स्थिति है ॥७॥ कपिला ने उन्हें विविध भाँति के शस्त्र तथा बाण आदि रखने-चलाने की कला और युद्धशास्त्र का उपदेश भी प्रदान किया ॥८॥ (और कहा) हे विप्र! युद्ध में तुम्हारी विजय निश्चित होगी। हे मुने! सत्य अस्त्र बिना तुम्हारी मृत्यु सम्भव नहीं है ॥९॥ ब्राह्मण का युद्ध ऐसे राजा के साथ, जो दत्तात्रेय

नृपेण सार्धं ते युद्धमयुक्तं ब्राह्मणस्य च। दत्तात्रेयस्य शिष्येण व्यर्थं वै शक्तिधारिणा॥
इत्युक्त्वा कपिला ब्रह्मन्विरराम मनस्विनी ॥१०॥
मुनिर्मनस्वी सैन्यं च सज्जीकृत्य ततो मुने। गृहीत्वा सर्वसैन्यं च स जगाम रणाजिरम् ॥११॥
राजा जगाम युद्धाय ननाम मनिपुंगवम्। उभयोः सैन्ययोर्युद्धं बभूव बहुदुष्करम् ॥१२॥
राजसैन्यं जितं सर्वं कपिलासेनया बलात्। विचित्रं च रथं राज्ञो बभञ्जे लीलया रणे।१३॥
धनुश्चिच्छेद संनाहं सा सेना कापिली मुदा। नृपेन्द्रः कापिलेयानि जेतुं सैन्यानि चाक्षमः ॥१४॥
सैन्यान्वितं शस्त्रवृष्टया न्यस्तशस्त्रं चकार सा। शरवृष्टया शस्त्रवृष्टया राजा मूर्च्छामवाप ह ॥१५॥
किंचिच्छिष्टं बलं राज्ञः किंचिदेव पलायितम्। मुनीन्द्रो मूर्च्छितं दृष्ट्वा नृपेन्द्रमतिथिं मुने ॥१६॥
कृपानिधिश्च कृपया तत्सैन्यं संजहार च। गत्वा सैन्यं विलीनं च कपिलायां च कृत्रिमम् ॥१७॥
नृपाय मुनिना शीघ्रं दत्ताश्चरणरेणवः । आशीर्वादं प्रदत्तं च जयोऽस्त्विति कृपालुना ॥१८॥
कमण्डलुजलं प्रोक्ष्य जीवयामास तं नृपम्। स राजा चेतनां प्राप्य समुत्थाय रणाजिरात् ॥१९॥
मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिः। मुनिः शुभाशिषं दत्त्वा राजानं त्वालिलिङ्ग सः ॥२०॥
पुनस्तं स्नापयित्वा च भोजयामास यत्नतः। नवनीतं हि हृदयं ब्राह्मणानां तु संततम्॥२१॥

का शिष्य और शक्तिधारी है, अनुचित एवं व्यर्थ है। हे ब्रह्मन्! इतना कहकर वह मनस्विनी गौ चुप हो गयी ॥१०॥ पश्चात् मनस्वी मुनि ने सेना को तैयार कर उसके साथ रणक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया॥११॥ राजा ने भी युद्धस्थल में पहुँचकर मुनिश्रेष्ठ जमदग्नि को नमस्कार किया। अनन्तर दोनों की सेनाओं में भीषण युद्ध आरम्भ हो गया॥१२॥ कपिला की सेनाओं ने राज-सेनाओं को बलात् पराजित कर दिया और रणस्थल में राजा के विचित्र रथ को लीला पूर्वक तोड़-फोड़ डाला॥१३॥ उसका कवच काट दिया; राजेन्द्र उस कापिली (कपिला की) सेना को जीतने में समर्थ न हो सका॥१४॥ उस (सेना) ने शस्त्र वर्षा द्वारा सैन्य युक्त राजा को शस्त्ररहित कर दिया। बाणवर्षा और शस्त्र वर्षा द्वारा राजा मूर्च्छित हो गया॥१५॥ हे मुने! राजा की कुछ सेना शेष रह गई और कुछ भाग निकली। कृपानिधान मुनि ने उस अतिथि राजा को मूर्च्छित देखकर कृपया उसकी पलायन करने वाली सेना को बुला दिया और मुनि की कृत्रिम सेना कपिला में अन्तर्हित हो गयी॥१६-१७॥ उपरांत मुनि ने राजा को शीघ्र अपना चरण-रज प्रदान किया। उस कृपालु ने शुभाशिष भी दिया कि—'तुम्हारी जय हो'। इतना कहकर कमण्डलु के जल से सिंचन कर उन्हें जीवित कर दिया॥१८॥ चेतना प्राप्त होने पर राजा ने रणस्थल से बाहर निकल कर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ा, शिर से मुनिवर्य को नमस्कार किया और मुनि ने भी शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए राजा का आलिंगन किया तथा स्नान कराकर यत्न से उसे भोजन कराया क्योंकि ब्राह्मणों का हृदय सदा नवनीत (मक्खन) के समान (कोमल) होता है ॥१९-२१॥

अन्येषां क्षुरधाराभमसाध्यं दारुणं सदा। उवाच तं मुनिश्रेष्ठो गृहं गच्छ धराधिप॥ ॥२२॥

राजोवाच

रणं देहि महाबाहो धेनुं किंवा मयेप्सिताम् ॥२३॥

इति श्री ब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निकार्तवीर्यार्जुनयुद्धवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

हरिं स्मरन्मुनिश्रेष्ठो वाक्यं श्रुत्वा च भूभृतः। हितं सत्यं नीतिसारं प्रवक्तुमुपचक्रमे॥१॥

मुनिरुवाच

गृहं गच्छ महाभाग रक्ष धर्मं सनातनम्। सर्वसंपत्तिस्थिरा शश्वत्स्थिते धर्मे सुनिश्चितम्॥२॥
त्वां च दृष्ट्वा निराहारं समानीय गृहं नृप। तव पूजामकरवं यथाशक्ति विधानतः॥३॥
सांप्रतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा पादरेणुं शुभाशिषम्। अददां चेतयांचक्रे वक्तुमेवोचितं न च॥४॥
नृपस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य मुनिपुंगवम्। रथमन्यं त्वारुरोह युद्धं देहीत्युवाच ह॥५॥

अन्य लोगों का हृदय क्षुर (स्तुरे) की धार के समान सदा असाध्य एवं भीषण होता है। (अनन्तर) मुनिवर्य ने कहा—हे राजन् ! अब तुम अपने घर चले जाओ ॥२२॥

राजा बोला—हे महाबाहो ! (मैं घर नहीं जाऊँगा) मुझे युद्ध दीजिये या मेरी मनचाही धेनु (गौ) देने की कृपा करें॥२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में जमदग्नि-कार्तवीर्यार्जुनयुद्धवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

अध्याय २६

ब्रह्मा द्वारा उक्त युद्ध का शमन

नारायण बोले—मुनिश्रेष्ठ ने भगवान् का स्मरण करते हुए, राजा की कही हुई बातों को सुनकर उसे उत्तर देना आरम्भ किया, जो हित, सत्य और नीति का सार भाग था॥१॥

मुनि बोले—हे महाभाग ! अपने घर जाओ और सनातन धर्म की रक्षा करो। क्योंकि धर्म में निरन्तर स्थित रहने पर समस्त सम्पत्ति सुस्थिर रहती है यह सुनिश्चित है॥२॥ हे नृप ! तुम्हें भूखा देखकर मैं अपने घर लाया और सविधान एवं यथाशक्ति तुम्हारा सम्मान किया॥३॥ इस समय भी तुम्हें मूर्च्छित देखकर मैंने अपने चरण-रज समेत शुभाशीर्वाद प्रदान किया, जिससे तुम्हें चेतना प्राप्त हुई और यह कहना उचित भी नहीं है॥४॥ मुनि की बातें सुनकर राजा ने मुनिवर्य को प्रणाम किया और अन्य रथ पर

मुनिः कृत्वा च संनाहं तं योद्धुमुपचक्रमे। राजा तं युयुधे तत्र कोपेन हृतचेतनः ॥६॥
कपिलादत्तशस्त्रेण न्यस्तशस्त्रं चकार तम्। कपिलादत्तया शक्त्या पुनर्मूर्च्छामवाप च ॥७॥
पुनश्च चेतनां प्राप्य राजा राजीवलोचनः। मुनिना युयुधे तत्र कोपेन पुनरेव च ॥८॥
आग्नेयं योजयामास समरे नृपपुंगवः। मुनिर्निर्वापयामास वारुणेन च लीलया ॥९॥
नृपेन्द्रो वारुणास्त्रं च चिक्षेप समरे मुनौ। वायव्यास्त्रेण स मुनिः शमयामास लीलया ॥१०॥
वायव्यास्त्रं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप समरे तदा। गान्धर्वेण मुनिश्रेष्ठः शमयामास तत्क्षणम् ॥११॥
नागास्त्रं च नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप रणमूर्धनि। गारुडेन मुनिश्रेष्ठो निजघान क्षणान्मुने ॥१२॥
माहेश्वरं महास्त्रं च शतसूर्यसमप्रभम्। चिक्षेप नृपतिश्रेष्ठो द्योतयन्तं दिशो दश ॥१३॥
वैष्णवास्त्रेण दिव्येन त्रिलोकव्यापकेन च। मुनिर्निर्वापयामास बहुयत्नेन नारद ॥१४॥
मुनिर्नारायणास्त्रं च चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। शस्त्रं त्यक्त्वा[1] महाराजो नमाम शरणं ययौ ॥१५॥
ऊर्ध्वं च भ्रमणं कृत्वा क्षणं दीप्त्वा दिशो दश। प्रलयाग्निसमं तत्र स्वयमन्तरधीयत ॥१६॥
जृम्भणास्त्रं च स मुनिश्चिक्षेप रणमूर्धनि। निद्रां प्रापत्तेन राजा सुष्वाप च मृतो यथा ॥१७॥
दृष्ट्वा नृपं निद्रितं तं चार्धचन्द्रेण तत्क्षणम्। चिच्छेद सारथिं यानं धनुर्बाणं मुनिस्तदा ॥१८॥

चढ़कर उनसे कहा—मुझे युद्ध दीजिये ॥५॥ अनन्तर मुनि ने कवच धारण कर उनसे युद्ध करना आरम्भ किया तथा राजा ने भी अति क्रुद्ध होकर उनसे घोर युद्ध किया ॥६॥ मुनि ने कपिला (गौ) के दिये हुए शस्त्र द्वारा राजा को शस्त्ररहित कर दिया और कपिला की दी हुई शक्ति द्वारा राजा पुनः मूर्च्छित हो गया ॥७॥ तदुपरांत चेतना प्राप्त होने पर कमल के समान नेत्र वाले राजा ने क्रुद्ध होकर मुनि के साथ भीषण युद्ध किया। इस श्रेष्ठ नृपति ने युद्धस्थल में मुनि के ऊपर आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, मुनि ने उसे वारुणास्त्र द्वारा लीलापूर्वक समाप्त कर दिया ॥८-९॥ नृपेन्द्र ने रणांगण में मुनि के ऊपर वारुणास्त्र का प्रयोग किया, मुनि ने वायव्यास्त्र द्वारा लीला से उसे शान्त कर दिया ॥१०॥ राजा ने मुनि के ऊपर वायव्यास्त्र का प्रयोग किया, मुनिवर्य ने उसी क्षण गान्धर्वास्त्र द्वारा उसे विफल कर दिया ॥११॥ राजा ने रणक्षेत्र में मुनि के ऊपर नागास्त्र का प्रयोग किया, मुनि-श्रेष्ठ ने क्षणमात्र में उसे गारुड़ास्त्र द्वारा नष्ट कर दिया ॥१२॥ हे नारद! राजा ने मुनि के ऊपर माहेश्वर-अस्त्र का प्रयोग किया, जो सबसे महान्, सैकड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण और दशो दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था। मुनि ने दिव्य वैष्णवास्त्र द्वारा, जो तीनों लोकों में व्यापक था, अतिप्रयत्न से उसे शान्त कर दिया ॥१३-१४॥ अनन्तर मुनि ने राजा के ऊपर नारायणास्त्र का मंत्रपूर्वक प्रयोग किया, महाराज ने शस्त्र त्यागकर उसे नमस्कार किया और उसकी शरण में गये, जिससे वह उसी क्षण दशों दिशाओं में प्रलय-अग्नि के समान ऊपर भ्रमण कर उसी स्थान में स्वयं अन्तर्हित हो गया ॥१५-१६॥ मुनि ने उसी समय रणस्थल में जृंभणास्त्र का प्रयोग किया, जिससे राजा को निद्रा आ गयी और वे मृतक की भाँति सो गये ॥१७॥ मुनि ने राजा को निद्रा-मग्न देखकर उसी क्षण अर्द्धचन्द्राकार अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे राजा का सारथी, रथ और धनुष-बाण कट गये

---

१ ख. दृष्ट्वा।

मुकुटं च क्षुरप्रेण च्छत्रं संनाहमेव च। अस्त्रं तूणं वाजिगणं विविधेन च भूभृतः॥१९॥
मुनिस्तत्सचिवान्सर्वान्नागास्त्रेणैव लीलया। निबध्य स्थापयामास प्रहस्य समरस्थले॥२०॥
मुनिस्तं बोधयामास सुमन्त्रेणैव लीलया। निबद्धसर्वामात्यानां दर्शयामास भूमिपम्॥२१॥
दर्शयित्वा नृपं तांश्च मोचयामास तत्क्षणम्। नृपेन्द्रमाशिषं कृत्वा गृहं गच्छेत्युवाच ह॥२२॥
राजा कोपात्समुत्थाय शूलमुद्यम्य यत्नतः। चिक्षेप तं मुनिश्रेष्ठं मुनिः शक्त्या जघान तम्॥२३॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य रणस्थलम्। सुप्रीतिं जनयामास सुनीत्या च परस्परम्॥२४॥
मुनिर्ननाम ब्रह्माणं तुष्टाव च रणस्थले। राजा नत्वा विधिं चर्षिं स्वपुरं प्रययौ तदा॥२५॥
मुनिर्ययौ स्वाश्रमं च स्वलोकं कमलोद्भवः। इत्येवं कथितं किंचिदपरं कथयामि ते॥२६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निकार्तवीर्ययुद्धोपशमवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिं स्मृत्वा गृहं गत्वा राजा विस्मितमानसः। आजगाम महारण्ये जमदग्न्याश्रमं पुनः॥१॥

॥१८॥ अनेक प्रकार के बाण से राजा के मकुट, छत्र, कवच, अस्त्र, तरकस और घोड़ों को भी बेध डाला ॥१९॥ मुनि ने उस समर-भूमि में हँसते-हँसते नागास्त्र द्वारा लीला से उनके मंत्रियों को बांध लिया और सुमन्त्र द्वारा शीघ्र राजा को चैतन्य कर उनके बंधे हुए सभी मंत्रियों को उन्हें दिखाया। ॥२०-२१॥ उपरांत राजा को दिखाकर उन्हें उसी समय मुक्त कर दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम घर चले जाओ॥२२॥ क्रुद्ध होकर राजा ने उठकर प्रयत्न से शूल का प्रयोग किया, जिसे मुनि ने शक्ति द्वारा नष्ट कर दिया॥२३॥ इसी बीच ब्रह्मा ने वहाँ रणक्षेत्र में आकर उत्तम नीति द्वारा समझा-बुझाकर दोनों में प्रीति-भाव उत्पन्न किया॥२४॥ मुनि ने उस युद्धस्थल में सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा को नमस्कार किया, और राजा उस समय ब्रह्मा एवं उन ऋषि को नमस्कार करके अपने नगर चला गया, मुनि अपने आश्रम पर गये और ब्रह्मा भी अपने लोक को चले गये। इतना तो मैंने तुम्हें बता दिया और अब आगे भी कह रहा हूँ, सुनो॥२५-२६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में जमदग्नि और कार्तवीर्य का युद्धोपशमन-वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२६॥

अध्याय २७

जमदग्नि-विनाश और परशुराम की प्रतिज्ञा

नारायण बोले—भगवान् का स्मरण करके मन में आश्चर्य करता हुआ राजा अपने घर चला गया। अनन्तर वह पुनः उस महान् जंगल में जमदग्नि के आश्रम में आया॥१॥

रथानां च चतुर्लक्षं रथिनां दशलक्षकम् । अश्वेन्द्राणां गजेन्द्राणां पदातीनामसंख्यकम् ॥२॥
राजेन्द्राणां सहस्रं च महाबलपराक्रमम् । महासमृद्धियुक्तश्च त्रैलोक्यं जेतुमीश्वरः ॥३॥
सर्वतो वेष्टयामास जमदग्न्याश्रमं मुने। रथस्थो वर्मयुक्तश्च कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम् ॥४॥
सैन्यशब्दैर्वाद्यशब्दैर्महाकोलाहलैर्मुने। जमदग्न्याश्रमस्थाश्च मूर्च्छामापुर्भयेन च ॥५॥
कुटीं प्रविश्य बलवान्गृहीत्वा कपिलां शुभाम्। पुरं गन्तुं मनश्चक्रे दुर्बुद्धिरसदाशयः ॥६॥
समुत्तस्थौ मुनिश्रेष्ठो गृहीत्वा सशरं धनुः। एकाकी मुक्तगात्रश्च धेनुं नत्वा हरिं स्मरन् ॥७॥
आश्रमस्थाञ्जनान्सर्वानाश्वास्य च यत्नतः। आजगाम रणस्थानं निःशङ्को नृपतेः पुरः ॥८॥
निर्ममे शरजालं च स मुनिर्मन्त्रपूर्वकम्। आच्छादयत्स्वाश्रमं तैर्मानवं वर्मणा यथा ॥९॥
अपरं शरजालं च निर्ममे पुनिपुंगवः। तैरेवाऽऽवरणं चक्रे सर्वसैन्यं यथाक्रमम् ॥१०॥
मुनिना शरजालेन सर्वसैन्यं समावृतम्। तानि सर्वाणि गुप्तानि यथा पत्राणि पञ्जरे ॥११॥
राजा दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठमवरुह्य रथात्पुरः। सार्धं नृपेन्द्रैर्भक्त्या च प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥१२॥
नत्वाऽऽरुरोह यानं स मुनेः प्राप्य शुभाशिषः। आरुह्य च नृपश्रेष्ठः स्वयानं हृष्टमानसः ॥१३॥

उसके साथ चार लाख रथ, दश लाख रथ वाले सैनिक और बड़े-बड़े अश्व (घोड़े), हाथी एवं पैदल सैनिक असंख्य थे ॥२॥ एक सहस्र अन्य राजा लोग थे, जो महाबली एवं महापराक्रमी थे। इस प्रकार महासमृद्धियुक्त होकर वह राजा वहाँ आया, जो तीनों लोकों को जीतने में समर्थ था ॥३॥ उसने जमदग्नि का आश्रम चारों ओर से घेर लिया और स्वयं कार्तवीर्य्यार्जुन कवच पहनकर रथ पर अवस्थित था ॥४॥ हे मुने! उसकी सेनाओं के शब्दों, वाद्यों की भीषण ध्वनियों एवं महाकोलाहल से जमदग्नि-आश्रम के सभी लोग भय से मूर्च्छित हो गये ॥५॥ बलवान् राजा ने कुटी में प्रविष्ट होकर उस शुभमूर्ति कपिला को पकड़ लिया और दुर्बुद्धि एवं नीच विचार वाला राजा, उसे लेकर अपने घर की ओर जाने का विचार करने लगा ॥६॥ अनन्तर धनुष-बाण लेकर एकाकी (अकेले) और खुले शरीर वाले मुनिवर्य धेनु को नमस्कार करके भगवान् का स्मरण करते हुए आश्रम-वासियों को बड़े यत्न से आश्वासन प्रदान कर रणक्षेत्र में राजा के सामने निःशंक पहुँच गये ॥७-८॥ मुनि ने वहाँ पहुँचकर यत्नपूर्वक बाणों का जाल-सा बना दिया। कवच पहने हुए मनुष्य के समान उसी जाल से अपने आश्रम को आच्छादित कर दिया ॥९॥ मुनिवर्य ने उसी समय एक दूसरे शर-जाल का निर्माण किया और उसी द्वारा राजा की समस्त सेनाओं को क्रमशः आवृत कर दिया ॥१०॥ इस प्रकार मुनि-निर्मित बाणों के जाल में राजा की समस्त सेनाएँ आच्छादित होकर पिंजड़े में पक्षी की भाँति गुप्त हो गईं ॥११॥ अनन्तर राजा मुनिश्रेष्ठ को देखकर रथ से उतर पड़ा और अपने सहायक राजाओं के साथ हाथ जोड़े भक्ति-पूर्वक उन्हें प्रणाम करने लगा ॥१२॥ मुनि का शुभाशीर्वाद प्राप्त होने पर राजा अत्यन्त हर्षित होकर अपने रथ पर बैठा और सहायक राजाओं के साथ अस्त्र, शस्त्र, गदा एवं शक्ति का प्रयोग किया, किन्तु मुनिवर्य

नृपैः सार्धं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप मुनिपुंगवे। अस्त्रं शस्त्रं गदां शक्तिं जघान क्रीडया मुनिः ॥१४॥
मुनिश्चिक्षेप दिव्यास्त्रं चिच्छिदे लीलया नृपः। शूलं चिक्षेप नृपतिस्तं जघान तदा मुनिः ॥१५॥
अपरं शरजालं च निर्ममे मुनिपुंगवः। शस्त्रौघैर्दुर्निवार्यैश्च खण्डं खण्डं चकार सः ॥१६॥
निबद्धाः शरजालेन न च शक्ताः पलायितुम्। जृम्भणास्त्रेण मुनिना ते च सर्वे विजृम्भिताः ॥१७॥
हस्त्यश्वरथपादातसहितं सर्वसैन्यकम्। राजानं निद्रितं दृष्ट्वा न जघान मुनीश्वरः ॥१८॥
गृहीत्वा कपिलां हृष्टो रुदन्तीं शोकमूर्च्छिताम्। बोधयित्वा पुरः कृत्वा स्वाश्रमं गन्तुमुद्यतः ॥१९॥
एतस्मिन्नन्तरे राजा चेतनां प्राप्य नारद। निवारयामास मुनिं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥२०॥
जगाम कपिला त्रस्ता स्वस्थानं च रणाजिरात्। मुनिश्च तस्थौ निःशङ्को गृहीत्वा सशरं धनुः ॥२१॥
ब्रह्मास्त्रं च नृपश्रेष्ठः स चिक्षेप मुनौ तदा। ब्रह्मास्त्रेण मुनीन्द्रस्य सद्यो निर्वाणतां गतम् ॥२२॥
दिव्यास्त्रेण मुनिश्रेष्ठो नृपस्य सशरं धनुः। रथं च सारथिं चैव चिच्छिदे वर्म दुर्वहम् ॥२३॥
अथ राजा महाक्रुद्धो ददर्श स्वसमीपतः। दत्तेन दत्तां शक्तिं तामेकपूरुषघातिनीम् ॥२४॥
जग्राह नत्वा दत्तं तं स नत्वा शक्तिमुल्बणाम्। चूर्णयामास तत्रैव शतसूर्यसमप्रभाम् ॥२५॥

ने खेल-खेल में सबको नष्ट कर दिया। मुनि ने भी अपने दिव्य शस्त्र का प्रयोग किया। राजा ने भी उसे लीला से काट दिया राजा ने शूल का प्रयोग किया, मुनि ने उसे काट दिया और अपने बाणों द्वारा एक अन्य शर-जाल-सा निर्माण किया। किन्तु राजा ने अपने दुर्निवार शस्त्रों द्वारा उसके खण्ड-खण्ड कर दिये ॥१३-१६॥ शर-जाल में जो बँध गये थे, वे किसी प्रकार कहीं भाग न सके। पश्चात् अपने जृंभणास्त्र द्वारा मुनि ने हाथी, घोड़े, रथ समेत पैदल आदि सभी सैनिकों को गाढ़-निद्रा में मग्न कर दिया। राजा को निद्रित देखकर मुनिवर्य ने उसको मारा नहीं ॥१७-१८॥ प्रसन्नतावश केवल कपिला (गौ) को, जो रोती हुई मूर्च्छित हो गई थी, प्रबुद्ध किया और (उसे) लेकर अपने आश्रम की ओर प्रस्थान किया ॥१९॥ हे नारद! इसी बीच राजा को चेतना प्राप्त हो गयी, जिससे धनुष-बाण लेकर उसने मुनि को गौ ले जाने से रोक दिया ॥२०॥ किन्तु त्रस्त होने पर भी वह गौ रणस्थल से अपने स्थान को चली गयी और धनुष-बाण लेकर मुनि निःशंक होकर उसी स्थान पर गये ॥२१॥ राजा ने मुनि के ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, मुनिवर्य ने भी अपने ब्रह्मास्त्र द्वारा उसे उसी क्षण विफल कर दिया ॥२२॥ अनन्तर मुनि ने अपने दिव्यास्त्रों द्वारा राजा के धनुष-बाण, रथ और सारथि समेत भीषण कवच को भी छिन्न-भिन्न कर दिया ॥२३॥ इससे राजा अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने समीप रखी हुई उस शक्ति की ओर देखा, जो एक पुरुष का अवश्य संहार करती थी और दत्तात्रेय द्वारा प्राप्त हुई थी ॥२४॥ राजा ने प्रथम दत्तात्रेय को मानसिक नमस्कार किया और अनन्तर उस भीषण शक्ति को। उपरान्त सैकड़ों सूर्य के समान प्रभावाली उस शक्ति को ग्रहण कर राजा उसी स्थान पर उसे घुमाने लगा ॥२५॥

यत्तेजः सर्वदेवानां तेजो नारायणस्य च। शंभोश्च ब्रह्मणश्चैव मायायाश्चैव नारद ॥२६॥
तत्रैवाऽऽवाहयामास स योगी मन्त्रपूर्वकम्। तेजसा द्योतयामास गगनं च दिशो दश ॥२७॥
दृष्ट्वा क्षिपन्तीं तां देवा हाहाकारेण चुक्रुशुः। आकाशस्थाश्च समरं पश्यन्तो दुःखिता हृदा ॥२८॥
चिक्षेप तां चूर्णयित्वा कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्। सद्यः पपात सा शक्तिर्ज्वलन्ती मुनिवक्षसि ॥२९॥
विदार्योरो मुनेः शक्तिर्जगाम हरिसंनिधिम्। दत्ताय हरिणा दत्तो[1] शस्त्रास्त्रनिधये तदा ॥३०॥
मूर्च्छां संप्राप्य स मुनिः प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम्। तेजोऽम्बरे भ्रमित्वा च ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥३१॥
युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद कपिला मुहुः। हे तात तातेत्युच्चार्य गोलोकं सा जगाम ह ॥३२॥
सर्वं सा कथयामास गोलोके कृष्णमीश्वरम्। रत्नसिंहासनस्थं तं गोपैर्गोपीभिरावृतम् ॥३३॥
कृष्णेन ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवे पुरा। सा प्रीत्या पुष्करे ब्रह्मन्भृगुणा जमदग्नये ॥३४॥
नत्वा च कामधेनूनां समूहं सा जगाम ह। तदश्रुबिन्दुना मर्त्ये रत्नसंघो बभूव ह ॥३५॥
अथ राजा तं निहत्य बोधयित्वा स्वसैन्यकम्। प्रायश्चित्तं विनिर्वर्त्य जगाम स्वपुरं मुदा ॥३६॥
प्राणनाथं मृतं श्रत्वा जगाम रेणुका सती। मुनिं वक्षसि संस्थाप्य क्षणं मूर्च्छामवाप सा ॥३७॥

हे नारद! समस्त देवों का तेज, नारायण का तेज और शिव, ब्रह्मा एवं माया का तेज उस योगी ने उसमें मंत्रपूर्वक आवाहित किया, जिससे दशों दिशाओं में आकाश उसके तेज से प्रदीप्त हो उठा।।२६-२७।। राजा को मुनिके ऊपर उस शक्ति का प्रयोग करते हुए देखकर देवता लोग दुःखितहृदय होकर ऊँचे स्वर से हाहाकार मचाने लगे, जो उस युद्धको देखने के लिए वहाँ आकाश में खड़े थे।।२८।। कार्तवीर्यार्जुन ने स्वयं उसे बड़े वेग से घुमाकर छोड़ा था, वह शक्ति प्रदीप्त होती हुई उसी क्षण मुनि के वक्षःस्थल पर जा गिरी।।२९।। मुनि के हृदय को विदीर्ण करती हुई वह शक्ति भगवान् के समीप चली गयी, जिसे भगवान् ने शस्त्रास्त्र के निधान दत्तात्रेय को दिया था।।३०।। मुनि को उसी समय मूर्च्छा आ गयी और उनके प्राण निकल गये। तेज आकाश में भ्रमण करते हुए ब्रह्मलोक चला गया।।३१।। युद्ध में मुनि को मृतक देखकर वह कपिला गौ बार-बार रोदन करने लगी और हे तात! हे तात! कहती हुई वह गोलोक चली गयी।।३२।। गोलोक में पहुँच कर उसने भगवान् श्रीकृष्ण से समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जो वहाँ रत्नसिंहासन पर सुखासीन और गोप-गोपियों से घिरे हुए थे।।३३।। हे ब्रह्मन्! सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्ण ने वह गौ ब्रह्मा को दी थी। ब्रह्मा ने भृगु को और भृगु ने प्रेम वश पुष्कर में जमदग्नि को दी थी।।३४।। उपरांत कामधेनुओं के समूह को नमस्कार करके वह चली गयी। उसके अश्रुविन्दु द्वारा मर्त्यलोक में रत्न समूह उत्पन्न हुआ।।३५।। इसके पश्चात् राजा ने उन (जमदग्नि) को मारकर अपने सैनिकों को बता कर प्रायश्चित्त किया और अपने नगर चला गया। ३६।। अपने प्राणनाथ को मृतक सुनकर सती रेणुका वहाँ पहुँची और मुनि को अपने अंक में लेकर क्षणमात्र मूर्च्छित हो गयीं।।३७।।

---

१ ०त्ता दत्तेनैव नृपाय सा।

ततः सा चेतनां प्राप्य न रुरोद पतिव्रता। एहि वत्स भृगो राम राम रामेत्यवाच ह ॥३८॥
आजगाम भृगुस्तूर्णं क्षणाद्वै पुष्करादहो। ननाम मातरं भक्त्या मनोयायी च योगवित् ॥३९॥
दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकार्तां जननीं सतीम्। आकर्ण्य रणवृत्तान्तं प्रयान्तीं कपिलां शुचा[1] ॥४०॥
विललाप भृशं तत्र हे तात जननीति च। चितां चकार योगीन्द्रश्चन्दनैराज्यसंयुताम् ॥४१॥
रेणुका रामादाय तूर्णं कृत्वा स्ववक्षसि। चुचुम्ब गण्डे शिरसि रुरोदोच्चैर्भृशं मुने ॥४२॥
राम राम महाबाहो क्व यामि त्वां विहाय च। वत्स वत्सेति कृत्वैवं विललाप भृशं मुहुः ॥४३॥
मत्प्राणाधिक हे वत्स मदीयं वचनं शृणु। पित्रोः शेषक्रियां कृत्वा याया युद्धं न पुत्रक ॥४४॥
गृहे तिष्ठ सुखं वत्स तपस्यां कुरु शाश्वतीम्। समरं[2] नैव सुखदं दारुणैः क्षत्रियैः सह ॥४५॥
मातुर्वचनमश्रुत्वा प्रतिज्ञां तां चकार ह। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि ध्रुवं महीम् ॥४६॥
कार्तवीर्यं हनिष्यामि लीलया क्षत्रियाधमम्। पितॄंश्च तर्पयिष्यामि क्षत्रियक्षतजैस्तथा ॥४७॥
इत्युदीर्य पुरो मातुर्विललाप मुहुर्मुहुः। हितं तथ्यं नीतिसारं बोधयामास मातरम् ॥४८॥

अनन्तर चेतना प्राप्त होने पर उस पतिव्रता ने रोदन नहीं किया, प्रत्युत हे राम, हे राम, हे वत्स! हे भृगो! कह कर परशुराम को बुलाने लगी ॥३८॥ मनोवेग के समान चलने वाले एवं योगवेत्ता परशुराम उसी समय पुष्कर से आ पहुँचे और उन्होंने भक्तिपूर्वक अपनी माता को नमस्कार किया ॥३९॥ पश्चात् राम ने अपने पिता को मृतक देखा, माता को शोकविह्वल और शोकाकुल कपिला को गोलोक जाते हुए देखा एवं युद्ध का समस्त वृत्तान्त सुना। हे तात! हे जननी! ऐसा कहकर उन्होंने भी बार-बार विलाप किया। अनन्तर उस योगिराज ने घृतप्लुत चन्दन काष्ठ की चिता बनायी ॥४०-४१॥ रेणुका ने राम को शीघ्र अपने हृदय से लगाकर उनके कपोल एवं शिर का चुम्बन किया और अत्यन्त ऊँचे स्वर से वह बार-बार रोदन करने लगी। ॥४२॥ राम! हे राम! हे महाबाहो! मैं तुम्हें छोड़कर अब कहाँ जाऊँ तथा हे वत्स! हे वत्स! ऐसा बार-बार कहती हुई अति विलाप करने लगीं ॥४३॥ हे वत्स! तुम मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, अतः मेरी बातें सुनो। हे पुत्र! माता-पिता की अन्त्येष्टिक्रिया करने के उपरांत युद्ध में न जाना ॥४४॥ हे वत्स! सुखपूर्वक घर में रहो, निरन्तर तपस्या करो, किन्तु भीषण क्षत्रियों के साथ युद्ध न करना, क्योंकि वह कभी भी सुखप्रद नहीं होता है ॥४५॥ परशुराम ने माता की बात पर ध्यान न देकर ऐसी प्रतिज्ञा की कि 'मैं निश्चित ही पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियशून्य कर दूंगा, और उस अधम क्षत्रिय कार्तवीर्य्य का लीला पूर्वक वध करूँगा तथा उसी क्षत्रिय के रक्त से मैं अपने पितरों का तर्पण करूँगा।' अपनी माता के सामने ऐसी प्रतिज्ञा करके परशुराम पुनः विलाप करने लगे। अनन्तर उन्होंने अपनी माता से कहना आरम्भ किया, जो हितकर, सत्य और नीति का सार भाग था ॥४६-४८॥

---

१ क० शुभाम्। २ रं ते नैव शुभ्रं दा०।

राम उवाच

पितुः शासनहन्तारं पितुर्वधविधायकम्। यो न हन्ति महामूढो रौरवं स व्रजेद्ध्रुवम्॥४९॥
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः॥५०॥
सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुजल्पकः। एकादशैते पापिष्ठा वधार्हा वेदसंमताः॥५१॥
द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति। वपनं ताडनं चैव वधमाहुर्मनीषिणः॥५२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाऽऽजगाम भृगुः स्वयम्। अतित्रस्तो मनस्वी च हृदयेन विदूयता॥५३॥
दृष्ट्वा तं रेणुकारामौ विनतौ संबभूवतुः। स तावुवाच वेदोक्तं परलोकहिताय च॥५४॥

भृगुरुवाच

मद्वंशजातो ज्ञानी त्वं कथं विलपसे सुत। जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारे च चराचरम्॥५५॥
सत्यसारं सत्यबीजं कृष्णं चिन्तय पुत्रक। यद्गतं तद्गतं वत्स गतं नैवाऽऽगमिष्यति॥५६॥
यद्भवेत्तद्भवत्येव भविता यद्भविष्यति। पूर्वार्जितं स्वीयकर्मफलं केन निवार्यते॥५७॥
भूतं भव्यं भविष्यं च यत्कृष्णेन निरूपितम्। निरूपितं यत्तत्कर्म केन वत्स निवार्यते॥५८॥
मायाबीजं मायिनां च शरीरं पाञ्चभौतिकम्। संकेतपूर्वकं नाम प्रातःस्वप्नसमं सुत॥५९॥

राम बोले—पिता की आज्ञा भंग करने वाले और पिता का वध करने वाले का हनन जो नहीं करता है, वह महामूढ़ निश्चित रौरव नरक जाता है॥४९॥ अग्नि लगाने वाले, विष देने वाले, हाथ में हथियार रखने वाले, धन का अपहर्त्ता, क्षेत्र (खेत) और पत्नी का अपहरण करने वाला पिता एवं बन्धुओं की हिंसा करने वाला, सतत आलस्य करने वाला, निन्दक, कटुवादी—ये ग्यारहों महान् पापी होते हैं। वेद के मत से ये वध करने के योग्य होते हैं॥५०-५१॥ धन ले लेना, स्थान से निकाल देना, मुण्डन करा देना या ताड़ना देना (बेंत आदि मारना) यही ब्राह्मणोंका विद्वानों ने वध बतलाया है॥५२॥ इस बीच वहाँ भृगु स्वयं आ गये। वे अत्यन्त दुःखी मनस्वी हार्दिक दुःख प्रकट करने लगे। उन्होंने रेणुका और राम को विनय-विनम्र देखकर उनसे कुछ कहना आरम्भ किया, जो वेदसम्मत और परलोक के लिए हितकर था॥५३-५४॥

भृगु बोले—हे सुत! तुम मेरे वंश में उत्पन्न हो और ज्ञानी हो, विलाप क्यों कर रहे हो? क्योंकि संसार में समस्त चर-अचर जल के बुल्ले के समान (नश्वर) हैं॥५५॥ हे पुत्र! भगवान् श्रीकृष्ण का चिन्तन करो, जो सत्यसार और सत्यबीज रूप है। हे वत्स! जो गया, सो गया, जो चला गया वह पुनः नहीं आयेगा॥५६॥ जो होनहार रहता है, वह होकर रहता है, क्योंकि अपने जन्मान्तरीय कर्म फल को (भोगने से) कौन रोक सकता है॥५७॥ हे वत्स! भगवान् कृष्ण ने जिस भूत, वर्तमान और भविष्य का निर्माण कर दिया है और जिस कर्म का निरूपण कर दिया है, उसे कौन रोक सकता है॥५८॥ हे सुत! यह पाँच भूतों (पृथिवी, जल, तेज, आकाश और वायु) का बना शरीर मायावियों का मायाबीज है। प्रातःकाल के स्वप्न की भाँति केवल इसका एक संकेत मात्र नाम रहता है॥५९॥

क्षुधा[1] निद्रा दया शान्तिः क्षमा कान्त्यादयस्तथा। यान्ति प्राणा मनो ज्ञानं प्रयाते परमात्मनि ॥६०॥
बुद्धिश्च शक्तयः सर्वा राजेन्द्रमिव किंकराः। सर्वे तमनुगच्छन्ति तं कृष्णं भज यत्नतः॥६१॥
के वा केषां च पितरः के वा केषां सुताः सुत। कर्मभिः प्रेरिताः सर्वे भवाब्धौ दुस्तरे परम् ॥६२॥
ज्ञानिनो मा रुदन्त्येव मा रोदीः पुत्र सांप्रतम्। रोदनाश्रुप्रपतनान्मृतानां नरकं ध्रुवम् ॥६३॥
संकेताख्योच्चारणेन यद्रुदन्ति च बान्धवाः। शतवर्षं रुदित्वा तं प्राप्नुवन्ति न निश्चितम् ॥६४॥
पार्थिवांशं च पृथिवी गृह्णात्यस्थित्वचादिकम्। तोयांशं च तथा तोयं शून्यांशं गगनं तथा॥६५॥
वाय्वंशं च तथा वायुस्तेजस्तेजांशकं तथा। सर्वे विलीनाः सर्वेषु को वाऽऽयास्यति रोदनात् ॥६६॥
नामश्रुतियशःकर्मकथामात्रावशेषितः। वेदोक्तं चैव यत्कर्म कुरु तत्पारलौकिकम् ॥६७॥
स च बन्धुः सुपुत्रश्च परलोकहिताय यः। भृगोस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकं तत्याज तत्क्षणम्॥
रेणुका च महासाध्वी तं वक्तुमुपचक्रमे ॥६८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निसंहारपरशुराम-
प्रतिज्ञादिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

इससे परमात्मा (आत्मा) के शरीरसे निकल जाने पर क्षुधा, निद्रा, दया, शान्ति, क्षमा, कान्ति आदि और मन एवं ज्ञान समेत प्राण भी (शरीर से) चले जाते हैं॥६०॥ उसकी बुद्धि तथा समस्त शक्तियाँ भी, राजा के पीछे सेवक की भाँति, पीछे लगी चली जाती हैं, इसलिए प्रयत्नपूर्वक कृष्ण को भजो॥६१॥ हे सुत! कौन किनके पिता हैं और कौन किनके पुत्र। केवल कर्मवश प्रेरित होकर सभी लोग इस दुष्पार संसार-सागर में आकर पड़े हैं॥६२॥ हे पुत्र! ज्ञानी इस प्रकार रोदन नहीं करते हैं, अतः इस समय रोदन न करो। क्योंकि रोदन करने से आँसू गिरते हैं जिससे मृतक का निश्चित नरकवास होता है॥६३॥ जिस सांकेतिक नाम का उच्चारण करके बन्धुवर्ग रोदन करते हैं, उसे सौ वर्ष रोदन करने पर भी नहीं पा सकते हैं, यह निश्चित है। क्योंकि शरीर का पार्थिव अंश हड्डी, त्वचा आदि पृथिवी ग्रहण कर लेती है और उसी भाँति जलांश को जल, शून्यांश को आकाश, वायुअंश को वायु और तेज अंश को तेज ग्रहण कर लेता है॥६४-६६॥ इस प्रकार सब में सब विलीन हो जाते हैं तो रोदन करने से कौन आयेगा। अनन्तर उसके नाम, यश, कर्म की कथा मात्र शेष रह जाती है। अतः वेदोक्त कर्मों को परलोक के लिए अवश्य करो॥६७॥ क्योंकि जो परलोक का हितैषी होता है वही पुत्र और बन्धु है। भृगु की ऐसी बातें सुनकर महासती रेणुका ने उसी क्षण शोक त्याग दिया और उनसे कहने लगी॥६८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में जमदग्नि-संहार और परशुराम-प्रतिज्ञा आदि वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त॥२७॥

---

१ क. क्षुन्निद्रातृड्द०।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

रेणुकोवाच

ब्रह्मन्ननुगमिष्यामि प्राणनाथस्य सांप्रतम्। ऋतोश्चतुर्थदिवसे मृतोऽयं चाद्य मानदः॥१॥
कर्तव्या का व्यवस्थाऽत्र वद वेदविदां वर। त्वमागतो मे सहसा पुण्येन कतिजन्मनाम्॥२॥

भृगुरुवाच

अहो पुण्यवतो भर्तुरनुगच्छ महासति। चतुर्थदिवसं शुद्धं स्वामिनः सर्वकर्मसु॥३॥
शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि न शुद्धा दैवपित्र्ययोः। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽह्नि विशुध्यति॥४॥
व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात्। तद्वत्स्वामिनमादाय साध्वी स्वर्गं प्रयाति च॥५॥
मोदते स्वामिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश। अत ऊर्ध्वं कर्मभोगं भुङ्क्ष्व साध्वि शुभाशुभम्॥६॥
स पुत्रो भक्तिदाता यः सा च स्त्री यानुगच्छति। स बन्धुर्दानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत्॥७॥
सोऽभीष्टदेवो यो रक्षेत्स राजा पालयेत्प्रजाः। स च स्वामी प्रियां धर्ममतिं दातुमिहेश्वरः॥८॥
स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः। एते प्रशंस्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम्॥९॥

अध्याय २८

रेणुका बोली—हे ब्रह्मन्! मैं अब अपने प्राणनाथ (स्वामी) का अनुगमन करना चाहती हूँ, किन्तु मेरे ऋतु-धर्म का आज चौथा दिन है, जिसमें मेरे मानदाता ने प्राण त्याग किया है॥१॥ हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! मेरे अनेक जन्मों के पुण्य प्रभाव वश तुम आ गये हो, तो यह अवश्य बताने की कृपा करो कि मुझे इस अवस्था में क्या व्यवस्था करनी चाहिए॥२॥

भृगु बोले—हे महासति! तुम अपने पुण्यवान् पति का अनुगमन अवश्य करो, क्योंकि स्त्री चौथे दिन अपने पति के समस्त कार्यों के लिए शुद्ध है॥३॥ किन्तु स्त्री चौथे दिन केवल पति के लिए शुद्ध होती है, न कि देवकार्य और पितर कार्यों के लिए। देव एवं पितर कार्यों के लिए वह पाँचवें दिन शुद्ध होती है॥४॥ सँपेरा (साँप पकड़ने वाला) जिस प्रकार बिल से सर्प को बलात् पकड़ लेता है, उसी भाँति स्त्री भी पति को लेकर स्वर्ग चली जाती है॥५॥ हे साध्वि! वहां स्वामी के साथ चौदहों इन्द्रों के समय तक आनन्द-मग्न रहती है। इसके उपरांत तुम भी अपने शुभाशुभ कर्मों का भोग प्राप्त करो॥६॥ पुत्र वही है, जो भक्तिप्रदाता हो और स्त्री वही है, जो पति का अनुगमन करे। बन्धु वही है जो दान दे और शिष्य वही है, जो गुरु का सम्मान-प्रार्थना करे॥७॥ इष्टदेव वही है, जो रक्षा करे। राजा वही है, जो प्रजाओं का पालन करे। स्वामी वही है, जो अपनी प्रिया (स्त्री) को धर्म में लगाने में समर्थ हो सके॥८॥ और गुरु वही है जो धर्म देते हुए भगवान् की भक्ति प्रदान करे। क्योंकि वेदों और पुराणों में ये निश्चित रूप से प्रशंसनीय माने गये हैं॥९॥

रेणुकोवाच

गन्तुं स्वस्वामिना सार्धं का शक्ता भारते मुने। का वाऽप्यशक्ता नारीषु तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥१०॥

भृगुरुवाच

बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा। रजस्वला च कुलटा गलितव्याधिसंयुता ॥११॥
पतिसेवा विहीना या ह्यभक्ता कटुभाषिणी। एता गच्छन्ति चेद्दैवान्न कान्तं प्राप्नुवन्ति ताः ॥१२॥
संस्कृताग्निं पुरो दत्त्वा चितासु शयितं पतिम्। कान्तास्तमनुगच्छन्ति कान्ताश्चेत्प्राप्नुवन्ति ताः ॥१३॥
अनुगच्छन्ति याः कान्तं तमेव प्राप्नुवन्ति ताः। सार्धं कृत्वा पुण्यभोगं दिवि जन्मनि जन्मनि ॥१४॥
इयं ते कथिता साध्वि व्यवस्था गृहिणां ध्रुवम्। तीर्थे ज्ञानमृतानां च वैष्णवानां गतिं शृणु ॥१५॥
या साध्वी वैष्णवं कान्तं यत्र यत्रानुगच्छति। प्रयाति स्वामिना सार्धं वैकुण्ठे हरिसंनिधिम् ॥१६॥
विशेषे नास्ति भक्तानां तीर्थे वाऽन्यत्र नारद। मरणेन फलं तुल्यं मुक्तानां कृष्णभाविताम् ॥१७॥
तयोः पातो नास्ति तस्मान्महति प्रलये सति। नारायणं तं भजेत पुमांस्त्री कमलालयाम् ॥१८॥
तीर्थे ज्ञानमृतश्चापि वैकुण्ठं याति निश्चितम्। सभार्यो मोदते तत्र यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥१९॥
इत्युक्त्वा रेणुकां तत्र जामदग्न्यमुवाच ह। वेदोक्तं वचनं [1]सर्वं स भृगुः समयोचितम् ॥२०॥

रेणुका बोली—हे मुने! हे तपोधन! भारत में स्त्रियों में कौन-सी स्त्री अपने पति का अनुगमन करने में समर्थ होती है और कौन असमर्थ रहती है यह मुझे बताने की कृपा करें ॥१०॥

भृगु बोले—छोटे-बच्चे वाली, गर्भिणी, अनुत्पन्न रजोधर्म वाली, रजस्वला, कुलटा, गलित कुष्ठ की रोगिणी, पति की सेवा न करने वाली, अभक्ता और कटुवादिनी स्त्री, ये दैव संयोग से यदि अनुगमन करें भी तो पति को नहीं प्राप्त करती हैं ॥११-१२॥ चिता पर पति को शयन कराकर और उसमें सामने संस्काराग्नि लगाने के उपरांत जो स्त्रियाँ पति का अनुगमन करती हैं, वह यदि पति की प्रेयसी हैं, तो अवश्य उसे प्राप्त करती हैं ॥१३॥ क्योंकि जो स्त्रियां पति का अनुगमन करती हैं वे पुनः उसी पति को प्राप्त होती हैं और स्वर्ग में तथा प्रत्येक जन्म में पति के साथ पुण्य का उपभोग करती हैं ॥१४॥ हे साध्वि! इस प्रकार मैंने तुम्हें गृहस्थों की निश्चित व्यवस्था बता दी; अब तीर्थ में ज्ञान पूर्वक मरने वाले वैष्णवों की गति बता रहा हूँ, सुनो ॥१५॥ जो स्त्री पतिव्रता होती है तो उसका वैष्णव पति जहाँ-जहाँ जाता है, वह अवश्य जाती है और पति के साथ वैकुण्ठ में भगवान् के समीप पहुँचती है ॥१६॥ किन्तु हे नारद! भक्तों के तीर्थ या अन्य स्थान में प्राणत्याग करने में कोई विशेषता नहीं होती है। क्योंकि भगवान् कृष्ण के प्रेमी भक्त मुक्त रहते हैं अतः उनके (कहीं भी) मरने में समान फल है। महाप्रलय में भी उनका पतन नहीं होता है। इस लिए पुरुष और स्त्री को नारायण और कमलालया (लक्ष्मी) की सेवा करनी चाहिए ॥१७-१८॥ तीर्थ में ज्ञान पूर्वक मरने पर वह निश्चित वैकुण्ठ जाता है और सौ ब्रह्मा के समय तक वहाँ स्त्री समेत आनन्द का उपभोग करता है ॥१९॥ भृगु ने रेणुका से इस प्रकार कहकर जामदग्न्य (परशुराम) से भी कहना आरम्भ किया, जो वेदसम्मत और सामयिक था ॥२०॥ (उन्होंने कहा)—हे भृगो! हे वत्स! यहाँ

---

१ क. सत्यं।

एहि वत्स महाभाग त्यज शोकममङ्गलम्। उत्तानं कुरु तातं च दक्षिणाशिरसं भृगो॥२१॥
वस्त्रं यज्ञोपवीतं च नूतनं परिधापय। अनश्रुनयनो भूत्वा संतिष्ठन्दक्षिणामुखः॥२२॥
अरणीसंभवाग्निं च गृहाण प्रीतिपूर्वकम्। पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्वेषां स्मरणं कुरु॥२३॥
गयादीनि च तीर्थानि ये च पुण्याः शिलोच्चयाः। कुरुक्षेत्रं च गङ्गां च यमुनां च सरिद्वराम्॥२४॥
कौशिकीं चन्द्रभागां च सर्वपापप्रणाशिनीम्। गण्डकीमथ काशीं च पनसां सरयूं तथा॥२५॥
पुष्पभद्रां च भद्रां च नर्मदां च सरस्वतीम्। गोदावरीं च कावेरीं स्वर्णरेखां च पुष्करम्॥२६॥
रैवतं च वराहं च श्रीशैलं गन्धमादनम्। हिमालयं च कैलासं सुमेरुं रत्नपर्वतम्॥२७॥
वाराणसीं प्रयागं च पुण्यं वृन्दावनं वनम्। हरिद्वारं च बदरीं स्मारंस्मारं पुनः पुनः॥२८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीसुगन्धिकुसुमं तथा। प्रदाय वाससाऽऽच्छाद्य स्थापयैनं चितोपरि॥२९॥
कर्णाक्षिनासिकास्ये त्वं शलाकां च हिरण्मयीम्। कृत्वा निर्मन्थनं तात विप्रेभ्यो देहि सादरम्॥३०॥
सतिलं ताम्रपात्रं च धेनुं च रजतं तथा। सदक्षिणं सुवर्णं च दत्त्वाऽग्निं देह्याकातरः॥३१॥
ॐ कृत्वा दुष्कृतं कर्म जानता वाऽप्यजानता। मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम्॥३२॥
धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम्। दह सर्वाणि गात्राणि दिव्यांल्लोकान्स गच्छतु॥३३॥
इमं मन्त्रं पठित्वा तु तातं कृत्वा प्रदक्षिणम्। मन्त्रेणानेन देह्याग्निं जनकाय हरिं स्मरन्॥३४॥
ॐ अस्मत्कुले त्वं जातोऽसि त्वदीयो जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति वद सांप्रतम्॥३५॥

आओ! हे महाभाग! यह अमंगल शोक छोड़ दो और अपने (मृतक) पिता को दक्षिण दिशा की ओर शिर करके उतान शयन कराओ और नवीन वस्त्र एवं यज्ञोपवीत पहनाओ किन्तु उस समय अश्रुपात न होने पाये और दक्षिणाभिमुख रहो॥२१-२२॥ प्रेम पूर्वक अरणी से उत्पन्न अग्नि ग्रहण करो और पृथिवी के समस्त तीर्थों का स्मरण करो॥२३॥ गया आदि तीर्थों और पुण्य पर्वतों—कुरुक्षेत्र, गंगा, नदीश्रेष्ठ यमुना, कौशिकी, समस्त पाप-नाशिनी चन्द्रभागा, गण्डकी, काशी, पनसा, सरयू, पुष्पभद्रा, भद्रा, नर्मदा, सरस्वती, गोदावरी, कावेरी, स्वर्णरेखा, पुष्कर, रैवत, वराह, श्रीशैल, गन्धमादन, हिमालय, कैलास, रत्नपर्वत सुमेरु, वाराणसी, प्रयाग, पुण्य वृन्दावन, हरिद्वार और बदरिकाश्रम का बार-बार स्मरण करो॥२४-२८॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और सुगन्धित पुष्प वहाँ चिता के ऊपर रखकर उन्हें वस्त्र से आच्छादित करो॥२९॥ हे तात! कान, आँख, नाक और मुख में सुवर्ण की शलाका से निर्मन्थन करके ब्राह्मण को सादर समर्पित करो॥३०॥ तिलसमेत ताम्रपात्र, धेनु, रजत (चांदी) और दक्षिणा समेत सुवर्ण प्रदान करके निर्भयता पूर्वक अग्नि लगाओ और कहो कि ओं ज्ञानपूर्वक या अज्ञान वश पाप-पुण्य कर्म करके मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हुआ (अर्थात् उसके शारीरिक पांचों भूत अपने-अपने तत्त्वों में विलीन हो गये)॥३१-३२॥ अब धर्माधर्म युक्त और लोभ-मोह से आच्छन्न इस (व्यक्ति के) शरीर के समस्त अंगों को जला दो, जिससे यह दिव्य लोक चला जाये॥३३॥ इस मंत्र को पढ़ते हुए पिता की प्रदक्षिणा करो और भगवान् का स्मरण करते हुए इसी मन्त्र द्वारा पिता का अग्नि संस्कार करो॥३४॥ और यह भी कहो कि—ओं हमारे कुल में तुम उत्पन्न हुए हो, और पुनः तुम्हारा होकर उत्पन्न हो। यह स्वर्गलोक चले

अग्निं देहि शिरःस्थाने हे भृगो भ्रातृभिः सह। तच्चकार भृगुः सर्वं सगोत्रैराज्ञया भृगोः ॥३६॥
अथ पुत्रं रेणुका सा कृत्वा तत्र स्ववक्षसि। उवाच किंचिद्वचनं परिणामसुखावहम् ॥३७॥
अविरोधो भवाब्धौ च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। विरोधो नाशबीजं च सर्वोपद्रवकारणम् ॥३८॥
अकर्तव्यो विरोधो वै दारुणैः क्षत्रियैः सह। प्रतिज्ञा चैषा कर्तव्या मदीयं वचनं शृणु ॥३९॥
आलोच्य ब्रह्मणा सार्धं भृगुणा दिव्यमन्त्रिणा। यथोचितं च कर्तव्यं सद्भिरालोचनं शुभम् ॥४०॥
इत्युक्त्वा तं परित्यज्य कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि। सा सुष्वाप चितायां च पश्यन्ती तं हरिस्मृतिः ॥४१॥
वह्निं ददौ चितायां च तस रामो भ्रातृभिः सह। भ्रातृभिः पितृशिष्यैश्च सार्धं स विललाप च ॥४२॥
राम रामेति रामेति वाक्यमुच्चार्य सा सती। पुरस्ताज्जामदग्न्यस्य भस्मीभूता बभूव सा ॥४३॥
भर्तुर्नाम समाकर्ण्य तत्राऽऽजग्मुर्हरेश्चराः। रथस्थाः श्यामवर्णाश्च सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥४४॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः। किरीटिनः कुण्डलिनः पीतकौशेयवाससः ॥४५॥
रथे कृत्वा रेणुकां तां गत्वा ते ब्रह्मणः पदम्। जमदग्निं समादाय प्रजग्मुर्हरिसंनिधिम् ॥४६॥
तौ दम्पती च वैकुण्ठे तस्थतुर्हरिसंनिधौ। कृत्वा दास्यं हरेः शश्वत्सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥४७॥
अथ रामो ब्राह्मणैश्च भृगुणा सह नारद। पित्रोः शेषक्रियां कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥४८॥
गोभूहिरण्यवासांसि दिव्यशय्यां मनोरमाम्। सुवर्णाधारसहितां जलमन्नं च चन्दनम् ॥४९॥

जायँ, स्वाहा ॥३५॥ हे भृगो! भ्राताओं के साथ तुम उनके शिरोभाग में अग्नि लगाओ। इस प्रकार भृगु की आज्ञा से परशुराम ने गोत्रियों के साथ सम्पन्न किया ॥३६॥ अनन्तर रेणुका ने वहाँ पुनः राम को अपने अंक से लगाती हुई उनसे कुछ परिणाम में सुखप्रद वचन कहा ॥३७॥ (किसी से) विरोध न करना संसार-सागर में समस्त मंगलों का मंगल है और विरोध करना नाश का बीज एवं समस्त उपद्रवों का कारण है ॥३८॥ अतः भीषण क्षत्रियों के साथ विरोध न करना ऐसी प्रतिज्ञा करो और मेरी बात सुनो ॥३९॥ ब्रह्मा एवं दिव्य मंत्री भृगु के साथ मन्त्रणा (सलाह) करके यथोचित कार्य करना, क्योंकि सज्जनों से किया गया परामर्श शुभ होता है ॥४०॥ इतना कहकर उसे छोड़ कर पति को गोद में लेकर भगवान् का चिन्तन कर उन्हें देखती हुई चिता पर लेट गई ॥४१॥ अनन्तर राम ने भ्राताओं समेत चिता में अग्नि लगाया और भ्राताओं एवं पिता के शिष्य-वर्गों समेत विलाप करने लगे ॥४२॥ सती रेणुका हे राम, हे राम! ऐसा कहती हुई परशुराम के सामने (जलकर) भस्म हो गयी ॥४३॥ स्वामी का नाम सुनते ही भगवान् के दूत-गण रथ पर बैठे वहाँ तुरन्त पहुँच गये, जो श्यामवर्ग, सुन्दर चार भुजाएँ, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये, वनमाला पहने, किरीट, कुण्डल एवं पीताम्बर धारी थे ॥४४-४५॥ उन लोगों ने रेणुका और जमदग्नि को रथ पर बैठा कर ब्रह्मलोक होते हुए उन्हें भगवान् के समीप पहुँचा दिया ॥४६॥ इस प्रकार वे दम्पती वैकुण्ठ में भगवान् के समीप रह कर समस्त मंगलों की मंगल भगवान् की दास्यभक्ति निरन्तर करने लगे ॥४७॥ हे नारद! इसके पश्चात् राम ने भृगु एवं ब्राह्मणों समेत माता-पिता की शेष अन्त्येष्टि क्रिया सुसम्पन्न कर ब्राह्मणों को धन प्रदान किया—गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, दिव्य एवं सुवर्णाधारसमेत उत्तम शय्या, जल, अन्न, चन्दन, रत्नदीप,

रत्नदीपं रौप्यशैलं सुवर्णासनमुत्तमम् । सुवर्णाधारसहितं ताम्बूलं च सुवासितम् ॥५०॥
छत्रं च पादुके चैव फलं माल्यं मनोहरम्। फलं मूलादिकं चैव मिष्टान्नं च मनोहरम् ॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा ब्रह्मलोकं जगाम सः ॥५१॥
ददर्श ब्रह्मलोकं स शातकुम्भविनिर्मितम्। स्वर्णप्राकारसंयुक्तं स्वर्णस्तम्भैर्विभूषितम् ॥५२॥
ददर्श तत्र ब्रह्माणं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ॥५३॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च ऋषीन्द्रैः परिवेष्टितम् । विद्याधरीणां नृत्यं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥५४॥
संगीतमुपशृण्वन्तं गीयमानं च गायकैः। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् ॥५५॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम् । धातारं सर्वजगतां कर्तारं चेश्वरं परम् ॥५६॥
परिपूर्णतमं ब्रह्म जपन्तं कृष्णमीश्वरम्। गुह्ययोगं प्रवोचन्तं पृच्छन्तं शिष्यमण्डलम् ॥५७॥
दृष्ट्वा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगुः पुरः। उच्चैश्च रोदनं कृत्वा स्ववृत्तान्तमुवाच ह ॥५८॥

भृगुरुवाच

ब्रह्मंस्त्वद्वंशजोऽहं जमदग्निसुतो विधे । पितामहस्त्वमस्माकं सर्वज्ञं कथयामि किम् ॥५९॥
मृगयामागतं भूपं पिता मे चोपवासिनम्। पारणां कारयामास कपिलादत्तवस्तुभिः ॥६०॥
स राजा [1]कपिलालोभात्कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्। घातयामास मत्तातमित्युक्त्वोच्चै रुरोद सः ॥६१॥

चाँदी-पर्वत, सुवर्णाधार समेत उत्तम सुवर्णासन, सुवासित ताम्बूल, छत्र, सुन्दर खड़ाऊँ, फल, सुन्दर माला, फलमूल तथा मनोहर मिष्टान्न प्रदान किया। इस प्रकार ब्राह्मणों को धनदान देकर स्वयं ब्रह्मलोक चले गये ॥४८-५१॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्रह्मलोक देखा, जो सुवर्ण-रचित, सुवर्ण की चहारदीवारी से युक्त और सुवर्ण के स्तम्भों से सुशोभित था ॥५२॥ वहाँ ब्रह्मा को देखा, जो ब्रह्मतेज से देदीप्यमान और रत्नसिंहासन पर सुखासीन होकर रत्नों के भूषणों से विभूषित थे ॥५३॥ सिद्धों, मुनियों और ऋषियों में श्रेष्ठों से घिरे मन्द मुसुकान करते हुए, विद्याधरियों का नृत्य देख रहे थे ॥५४॥ गायक लोगों के गाने-बजाने सुन रहे थे। तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से भूषित थे। तप फल एवं समस्त सम्पत्ति के दाता, समस्त जगत् के धाता-कर्त्ता, परमेश्वर, परिपूर्णतम परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण का नाम जप रहे थे तथा शिष्यमण्डल के पूछने पर उन्हें गुह्य योग बता रहे थे ॥५५-५७॥ ऐसे ब्रह्मा को देख कर भृगु (परशुराम) उनके सामने खड़े हो गये और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया, अनन्तर ऊँचे स्वर से रोदन करते हुए अपना समस्त वृत्तान्त उनसे बतलाया ॥५८॥

भृगु बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! तुम्हारे वंश में हम उत्पन्न हुए हैं और जमदग्नि के पुत्र हैं। तुम हमारे पितामह हो और सर्वज्ञाता हो, मैं तुमसे क्या कहूँ ॥५९॥ मृगया (शिकार) खेलने के लिए आये हुए राजा को मेरे पिता ने भूखा देखकर कपिला की दी हुई वस्तुओं से उसे भोजन कराया ॥६०॥ अनन्तर उस राजा कार्तवीर्य्यार्जुन ने वही कपिला ले लेने के लोभ से स्वयं मेरे पिता को मार डाला। इतना कह कर उन्होंने अत्युच्च

---

१ क. मोहा० ।

निरुध्य बाष्पं स पुनरुवाच करुणानिधिः । माता मेऽनुगता साध्वी मां विहाय जगद्गुरो ॥६२॥
अधुनाऽहमनाथश्च त्वं मे माता पिता गुरुः । कर्ता पालयिता दाता पाहि मां शरणागतम् ॥६३॥
आगतोऽहं तव सभां प्रमातुर्मातुराज्ञया । उपायेन जगन्नाथ मद्वैरिहननं कुरु ॥६४॥
स राजा स च धर्मिष्ठः स दयालुर्यशस्करः । स पूज्यः स स्थिरश्रीश्च यो दीनं परिपालयेत् ॥६५॥
धनिदीनौ समं दृष्ट्वा यः प्रजां न च पालयेत् । [1]तद्गेहाद्याति रुष्टा श्रीः स भवेद्भ्रष्टराज्यकः ॥६६॥
श्रुत्वा विप्रबटोर्वाक्यं करुणासागरो विधिः । दत्त्वा शुभाशिषं तस्मै वासयामास वक्षसि ॥६७॥
श्रुत्वा भृगोः प्रतिज्ञां च विस्मितश्चतुराननः । अतीव दुष्करां घोरां बहुजीवविघातिनीम् ॥६८॥
कर्मणा तद्भवेत्सर्वमिति कृत्वा तु मानसे । उवाच जामदग्न्यं तं परिणामसुखावहम् ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

प्रतिज्ञा दुष्करा वत्स बहुजीवविघातिनी । सृष्टिरेषा भगवतः संभवेदीश्वरेच्छया ॥७०॥
सृष्टिः सृष्टा मया पुत्र क्लेशेनैवेश्वराज्ञया । सृष्टिलुप्तौ प्रतिज्ञा ते दारुणाऽकरुणा परा ॥७१॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छसि मेदिनीम् । एकक्षत्रियदोषेण तज्जातिं हन्तुमिच्छसि ॥७२॥

स्वर से रोदन किया ॥६१॥ करुणानिधान परशुराम ने किसी प्रकार आँसुओं को रोककर पुनः कहना आरम्भ किया—हे जगद्गुरो ! मेरी सती माता भी मुझे छोड़कर उन्हीं के साथ चली गयीं ॥६२॥ इस समय मैं अनाथ हूँ, अतः तुम्हीं मेरे पिता, माता एवं गुरु हो। तथा कर्ता, पालन करने वाले एवं दाता हो, मुझ शरणागत की रक्षा करो ॥६३॥ मैं पूजनीय माता की आज्ञा से तुम्हारी सभा में आया हूँ, अतः हे जगन्नाथ ! (किसी भी) उपाय से मेरे वैरी का हनन करो ॥६४॥ क्योंकि वही राजा, धर्मात्मा, दयालु, यशस्वी, पूज्य एवं अचललक्ष्मी से सम्पन्न है, जो दीनों का भलीभाँति पालन करे ॥६५॥ जो धनी एवं दीन को समान समझकर पालन नहीं करता है, उसके घर से रुष्ट होकर श्री चली जाती हैं और वह राज्यच्युत हो जाता है ॥६६॥ करुणासागर ब्रह्मा ने उस ब्राह्मण-बालक की बातें सुनकर उसे शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए अपने हृदय से लगा लिया ॥६७॥ परशुराम की उस प्रतिज्ञा को, जो अत्यन्त दुष्कर, भीषण एवं असंख्य जीवों का नाश करने वाली थी, सुनकर चतुरानन आश्चर्य-चकित हो गये ॥६८॥ कर्म से सब कुछ हो सकता है ऐसा अपने मन में विचार कर उन्होंने जामदग्न्य से कहना आरम्भ किया, जो परिणाम में अतिसुखप्रद था ॥६९॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स ! यह तुम्हारी प्रतिज्ञा बहुत दुष्कर है, इसमें अनेक जीवों की हिंसा होगी। यह सृष्टि भगवान् ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न होती है ॥७०॥ हे पुत्र ! ईश्वर की आज्ञावश मैंने इस सृष्टि का बड़े दुःख से सर्जन किया है और तुम्हारी प्रतिज्ञा अति भीषण एवं निर्दयतापूर्ण है इससे सृष्टि ही लुप्त हो जायगी ॥७१॥ इस पृथिवी को इक्कीस बार बिना राजा का करना चाहते हो, एक क्षत्रिय के अपराधवश उसकी जाति ही मिटाना चाहते हो ॥७२॥ भगवान् की की हुई यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के भेद से चार प्रकार की सृष्टि नित्य उत्पन्न

---

१ ख. तद्देहा०।

ब्रह्मक्षत्रियविट्छूद्रैर्नित्या सृष्टिश्चतुर्विधैः। आविर्भूता तिरोभूता हरेरेव पुनः पुनः ॥७३॥
अन्यथा त्वत्प्रतिज्ञा च भविता प्राक्तनेन ते। बह्वायासेन ते कार्यसिद्धिर्भवितुमर्हति[1] ॥७४॥
शिवलोकं गच्छ वत्स शंकरं शरणं व्रज। पृथिव्यां बहवो भूपाः सन्ति शंकरकिंकराः ॥७५॥
विनाऽऽज्ञया महेशस्य को वा तान्हन्तुमीश्वरः। बिभ्रतः कवचं दिव्यं शक्तेर्वै शंकरस्य च ॥७६॥
उपायं कुरु यत्नेन जयबीजं शुभावहम्। उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ॥७७॥
श्रीकृष्णमन्त्रकवचग्रहणं कुरु शंकरात्। दुर्लभं वैष्णवं तेजः शैवं शाक्तं विजेष्यति ॥७८॥
गुरुस्ते जगतां नाथः शिवो जन्मनि जन्मनि। मन्त्रो मत्तो न युक्तस्ते यो युक्तः स भवेद्विधिः ॥७९॥
कर्मणा लभ्यते मन्त्रः कर्मणा लभ्यते गुरुः। स्वयमेवोपतिष्ठन्ते ये येषां तेषु ते ध्रुवम् ॥८०॥
त्रैलोक्यविजयं नाम गृहीत्वा कवचं वरम्। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं भृगो ॥८१॥
दिव्यं पाशुपतं तुभ्यं दाता दास्यति शंकरः। तेन दत्तेन शस्त्रेण[2] क्षत्रसंघं विजेष्यसि ॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भृगोर्ब्रह्मलोकगमने
ब्रह्मोक्तोपायवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

और विनष्ट होती रहती है ॥७३॥ तुम्हारे जन्मान्तरीय संस्कार वश यह प्रतिज्ञा सफल नहीं हो सकती; हाँ, बहुत प्रयत्न करने पर तो कार्य-सिद्धि हो सकती है ॥७४॥ अतः हे वत्स! शिवलोक में शंकर की शरण में जाओ। क्योंकि पृथ्वी पर शंकर के भक्त अनेक राजा हैं, शंकर और दुर्गा का दिव्य कवच धारण करते हुए उन्हें बिना महेश्वर की आज्ञा के कौन मार सकता है? प्रयत्नपूर्वक उपाय करो जो जय का कारण एवं शुभावह हो। क्योंकि सभी उपक्रम उपाय द्वारा ही आरम्भ करने पर सफल होते हैं ॥७५-७७॥ शंकर से भगवान् श्रीकृष्ण का मन्त्र, कवच एवं दुर्लभ वैष्णव तेज प्राप्त करो, जिससे शैव एवं शाक्त तेज पर विजय प्राप्त कर सको ॥७८॥ जगत् के स्वामी शंकर तुम्हारे जन्म-जन्म के गुरु हैं अतः मेरा मंत्र तुम्हारे लिए युक्त नहीं है और जो युक्त है वह उपाय मैंने तुम्हें बता दिया ॥७९॥ क्योंकि कर्म से मन्त्र प्राप्त होता है और कर्म से ही गुरु प्राप्त होते हैं। अतः जो जिनके हैं वे निश्चित ही उनको मिल जाते हैं ॥८०॥ हे भृगो! तुम उनसे त्रैलोक्यविजय नामक श्रेष्ठ कवच प्राप्त करके इक्कीस बार इस पृथिवी को अवश्य भूपरहित कर सकोगे ॥८१॥ दाता शिव तुम्हें अपना पाशुपत दिव्य अस्त्र प्रदन करेंगे और उन्हीं के दिये मंत्र द्वारा तुम क्षत्रिय-समूहों को जीतोगे ॥८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में भृगु का ब्रह्मलोक-गमन तथा ब्रह्मोक्त उपाय वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

१क. ०र्भवतु शाश्वती। २ख. मन्त्रेण।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः।

नारायण उवाच

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रणम्य च जगद्गुरुम् । स्फीतस्तस्माद्वरं प्राप्य शिवलोकं जगाम सः ॥१॥
लक्षयोजनमूर्ध्वं च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम् । अनिर्वाच्यसुशोभाढ्यं वाय्वाधारं मनोहरम् ॥२॥
वैकुण्ठं दक्षिणे यस्य गौरीलोकश्च वामतः । यदधो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकात्परः स्मृतः ॥३॥
तेषामूर्ध्वं च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः । अत ऊर्ध्वं न लोकश्च सर्वोपरि च स स्मृतः ॥४॥
मनोयायी स योगीन्द्रः शिवलोकं ददर्श ह । उपमानोपमेयाभ्यां रहितं महदद्भुतम् ॥५॥
योगीन्द्राणां वरेण्यैश्च सिद्धविद्याविशारदैः । कोटिकल्पतपःपूतैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम् ॥६॥
वेष्टितं कल्पवृक्षाणां समूहैर्वाञ्छितप्रदैः । समूहैः कामधेनूनामसंख्यानां विराजितम् ॥७॥
पारिजाततरूणां च वनराजिविराजितम् । मधुलुब्धमधूम्राणां मधुरध्वनिमोहितम् ॥८॥
नवपल्लवसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम् । योगेन योगिनां सृष्टं स्वेच्छया शंकरेण च ॥९॥
शिल्पिनां गुरुणा स्वप्ने न दृष्टं विश्वकर्मणा । जन्तुभिर्वेष्टितं ब्रह्मन्योगदुष्टैर्निरामयैः ॥१०॥
सरोवरशतैर्दिव्यैः पद्मराजीविराजितैः । पुष्पोद्यानायुतैर्युक्तं सदा चातिसुशोभितम् ॥११॥
मणीन्द्रसाररचितैः शोभितैर्मणिवेदिभिः । राजमार्गशतैर्दिव्यैः सर्वतः परिभूषितम् ॥१२॥

अध्याय २९

नारायण बोले—ब्रह्मा की बातें सुनकर उन्होंने जगद्गुरु (ब्रह्मा) को नमस्कार किया और उनसे वरदान प्राप्त कर उत्साहपूर्वक शिवलोक को प्रस्थान किया ॥१॥ जो ब्रह्मलोक से एक लाख योजन ऊपर और ब्रह्मलोक से विलक्षण, अकथनीय शोभा से विभूषित, वायु का आधार एवं मनोहर है ॥२॥ उसके दक्षिण में वैकुण्ठ, बायें गौरी-लोक, नीचे ध्रुवलोक और स्वयं समस्त लोकों से परे है ॥३॥ इन सभी लोकों के ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर गोलोक है। उसके ऊपर कोई लोक नहीं है, सबसे ऊपर वही है, ऐसा बताया गया है ॥४॥ मन के समान वेग से चलने वाले योगिराज परशुराम ने वहाँ पहुँच कर शिवलोक देखा, जो उपमान, उपमेय से रहित, महान् अद्भुत, उत्तम योगिराज एवं सिद्धविद्यानिपुण तथा करोड़ों कल्पों तक तप करके पवित्र होने वाले पुण्यात्माओं से सुसेवित था ॥५-६॥ मनोरथ सिद्ध करने वाले कल्पवृक्षों के समूह से घिरा, असंख्य काम-धेनुओं के समूह से सुशोभित, पारिजात वृक्षों की वन-पंक्तियों से विभूषित, मधु के लोभी भ्रमरों की मधुर ध्वनि से मोहित, नये पल्लवों से युक्त, नर कोयलों की कूक से ध्वनित और योगियों के योग से तथा शंकर की स्वेच्छा से निर्मित था। ऐसा निर्माण शिल्पियों के गुरु विश्वकर्मा ने स्वप्न में भी नहीं देखा था। ब्रह्मन् ! शिवलोक योगदुष्ट स्वस्थ जन्तुओं से घिरा हुआ था ॥७-१०॥ कमलपंक्तियों से शोभित सैकड़ों दिव्य सरोवरों एवं पुष्पों की वाटिकाओं से सदा युक्त होने के नाते अति सुशोभित था ॥११॥ उत्तम मणियों के सारभाग की सुरचित वेदियों से अलंकृत, सैकड़ों दिव्य राजमार्ग (सड़कों) से चारों ओर सुभूषित और उत्तम मणियों के सारभाग से सुनिर्मित सैकड़ों गृहों से युक्त

१क. ०व्यैरभ्यन्तरविभू०।

मणीन्द्रसारनिर्माणशतकोटिगृहैर्युतम् । नानाचित्रविचित्राढ्यैर्मणीन्द्रकलशोज्ज्वलैः ॥१३॥
तन्मध्यदेशे रम्ये च ददर्श शंकरालयम् । मणीन्द्रसाररचितप्राकारं सुमनोहरम् ॥१४॥
अत्यूर्ध्वमम्बरस्पर्शि क्षीरनीरनिभं परम् । षोडशद्वारसंयुक्तं शोभितं शतमन्दिरैः ॥१५॥
अमूल्यरत्नरचितै रत्नसोपानभूषितैः । रत्नस्तम्भकपाटैश्च हीरकेण परिष्कृतैः ॥१६॥
माणिक्यजालमालाभिः सद्रत्नकलशोज्ज्वलैः । [1]नानाविचित्रचित्रेण चित्रितैः सुमनोहरैः ॥१७॥
आलयस्य पुरस्तत्र सिंहद्वारं ददर्श सः । रत्नेन्द्रसारखचितकपाटैश्च विराजितम् ॥१८॥
शोभितं वेदिकाभिश्च बाह्याभ्यन्तरतः सदा । रचिताभिः पद्मरागैर्महामरकतैर्गृहम् ॥१९॥
नानाप्रकारचित्रेण चित्रितं सुमनोहरम् । करालरूपावद्राक्षीद्द्वारपालौ भयंकरौ ॥२०॥
महाकरालदन्तास्यौ विकृतौ रक्तलोचनौ । दग्धशैलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ ॥२१॥
विभूतिभूषिताङ्गौ च व्याघ्रचर्माम्बरौ वरौ । पिङ्गलाक्षौ विशालाक्षौ जटिलौ च त्रिलोचनौ ॥२२॥
त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलन्तौ ब्रह्मतेजसा । तौ दृष्ट्वा मनसा भीतस्त्रस्तः किंचिदुवाच ह ॥२३॥
विनयेन विनीतश्च दुर्विनीतौ महाबलौ । आत्मनः सर्ववृत्तान्तं कथयामास तत्पुरः ॥२४॥
विप्रस्य वचनं श्रुत्वा कृपायुक्तौ बभूवतुः । गृहीत्वाऽऽज्ञां चरद्वारा शंकरस्य महात्मनः ॥२५॥

था, जो उत्तम मणियों के बने अनेक भाँति के चित्र-विचित्र कलशों से समुज्ज्वल दिखायी देते थे ॥१२-१३॥ उनके रम्य मध्य भाग में शंकर जी का गृह देखा, जो मणीन्द्र के सारभाग से रचित परकोटों से अतिमनोहर था ॥१४॥ अत्यन्त ऊँचा, गगनस्पर्शी, क्षीर-नीर के समान उत्तम वर्ण, सोलह दरवाजों से युक्त एवं सैकड़ों गृहों से सुशोभित था ॥१५॥ जो गृह अमूल्य रत्नों की बनी (सीढ़ियों) से विभूषित, हीरा जड़े हुए रत्नों के स्तम्भों और किवाड़ों से युक्त थे ॥१६॥ माणिक्य के जालरूपी मालाओं, उत्तम रत्न के समुज्ज्वल कलशों एवं अनेक भाँति के चित्र-विचित्र तथा अति मनोहर चित्रकारियों से सुशोभित थे ॥१७॥ महल के सामने उन्होंने सिंहद्वार देखा, जो उत्तम रत्नों के सार-भाग से खचित कपाटों (किवाड़ों) से विराजमान था। फिर गृह देखा, जो बाहर-भीतर सदा पद्मराग और महा-मरकत की बनी वेदियों से अलंकृत अनेक भाँति के चित्र-विचित्र तथा अति मनोहर चित्रों से चित्रित था। वहाँ भयंकर विकरालरूप वाले दो द्वारपालों को देखा, जिनके दाँत और मुख, महाभयंकर थे; लाल-लाल विकृत आँखे थीं; वे जले हुए पर्वत के समान थे; महान् बली और पराक्रमी थे; सर्वांग में विभूति (राख) लगाये, उत्तम बाघम्बर ओढ़े, पिंगल-विशाल नेत्र, जटा रखाये, त्रिनेत्र एवं त्रिशूल और पट्टिश (अस्त्र) लिए ब्रह्मतेज से प्रज्वलित थे। उन्हें देखकर भृगु मन में डर गये, किन्तु त्रस्त होते हुए भी कुछ बोले ॥१८-२३॥ विनयविनम्र होकर उन्होंने उन दुर्विनीत एवं महाबलवान् द्वारपालों के सामने अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥२४॥ विप्र की बातें सुनकर उन दोनों को दया आ गयी, अतः महात्मा शंकर की आज्ञा लेकर उन दोनों ने उन्हें भीतर जाने की

१क. ०मालावि० ।

प्रवेष्टुमाज्ञां ददतुरीश्वरानुचरौ वरौ। भृगुस्तदाज्ञामादाय प्रविवेश हरिं स्मरन् ॥२६॥
प्रत्येकं षोडश द्वारो ददर्श सुमनोहराः। द्वारपालैर्नियुक्ताश्च नानाचित्रविचित्रिताः ॥२७॥
दृष्ट्वा तां महदाश्चर्यादपश्यच्छूलिनः सभाम्। नानासिद्धगणाकीर्णां महर्षिगणसेविताम् ॥२८॥
पारिजातसुगन्धाढ्यवायुना सुरभीकृताम्। ददर्श तत्र देवेशं शंकरं चन्द्रशेखरम् ॥२९॥
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम्। विभूतिभूषिताङ्गं तं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ॥३०॥
महाशिवं शिवकरं शिवबीजं शिवाश्रयम्। आत्मारामं पूर्णकामं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥३१॥
ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। शश्वज्ज्योतिः स्वरूपं च लोकानुग्रहविग्रहम् ॥३२॥
धृतवन्तं जटाजालं दक्षकन्या समन्वितम्। तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम् ॥३३॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्। गुह्यं ब्रह्म प्रवोचन्तं शिष्येभ्यस्तत्त्वमुद्रया ॥३४॥
स्तूयमानं च योगीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः परिसेवितम्। पार्षदप्रवरैः शश्वत्सेवितं श्वेतचामरैः ॥३५॥
ज्योतीरूपं च सर्वाद्यं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्। ध्यायन्तं परमानन्दं पुलकाञ्चितविग्रहम् ॥३६॥
सुस्वरं साश्रुनेत्रंतमुद्गायन्तं गुणार्णवम्। भूतेन्द्रैर्वै रुद्रगणैः क्षेत्रपालैश्च वेष्टितम् ॥३७॥

आज्ञा प्रदान की। भृगु ने आज्ञा पाने पर भगवान् का स्मरण करते हुए भीतर प्रवेश किया ॥२५-२६॥ इसी भाँति सोलह दरवाजों को उन्होंने देखा जो अति मनोहर थे एवं जहाँ अनेक भाँति के चित्र-विचित्र द्वारपाल नियुक्त थे ॥२७॥ उन्हें देखते हुए उन्होंने शिव की सभा को देखा, जो अनेक भाँति के सिद्ध-गणों से आच्छन्न, महर्षिगणों से सुसेवित एवं पारिजात की अति सुगन्धित वायु से सुगन्धपूर्ण थी। वहाँ देवाधीश चन्द्रशेखर शिव को देखा, जो त्रिशूल, पट्टिश लिए, सुन्दर बाघम्बर ओढ़े, सर्वांग में विभूति रमाये, नाग का यज्ञोपवीत पहने, रत्न सिंहासन पर सुखासीन एवं रत्नों के भूषणों से विभूषित थे ॥२८-३०॥ वे कल्याणकारी, कल्याण के बीज, कल्याण के आश्रय, आत्माराम, पूर्णकाम, करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाले, मन्दहास वाले, प्रसन्नमुख, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, निरन्तर ज्योतिःस्वरूप, लोककल्याणार्थ शरीरधारी, जटा-जूट धारण किये, गौरी से युक्त, तप का फल और समस्त सम्पत्ति के प्रदाता, शुद्ध स्फटिक के समान वर्ण वाले, पाँच मुख और तीन नेत्र वाले एवं शिष्यों को तत्त्व मुद्रा गुह्य ब्रह्म का उपदेश करने वाले, योगीन्द्रों से स्तुत, सिद्धेन्द्रों से चारों ओर से सेवित, श्रेष्ठ पार्षदों द्वारा निरन्तर श्वेतचामर से सुसेवित, ज्योतिरूप एवं परमानन्द भगवान् श्रीकृष्ण का, जो सर्वादि और प्रकृति से परे हैं, ध्यान करने वाले महाशिव विभोर होकर सर्वांग में पुलकायमान हो रहे थे। एवं उत्तम स्वर से गुण-सागर भगवान् का भजन करते हुए प्रेम का आँसू बहा रहे थे। तथा भूतगण, रुद्रगण एवं क्षेत्रपालों से आवे-

मूर्ध्ना ननाम परशुरामो दृष्ट्वा तमादरात्। तद्वामे कार्तिकेयं च दक्षिणे च गणेश्वरम् ॥३८॥
नन्दीश्वरं महाकालं वीरभद्रं च तत्पुरः। अङ्के ददर्श कान्तां तां गौरीं शैलेन्द्रकन्यकाम् ॥३९॥
ननाम सर्वान्मूर्ध्ना च भक्त्या च परया मुदा। दृष्ट्वा हरं परं तोषात्स्तोतुं समुपचक्रमे ॥४०॥
सगद्गदपदं दीनः साश्रुनेत्रोऽतिकातरः। कृताञ्जलिपुटः शान्तः शोकार्तः शोकनाशनम् ॥४१॥

परशुराम उवाच

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि सर्वथा स्तोतुमक्षमः। [1]अक्षराक्षयबीजं च किंवा स्तौमि निरीहकम् ॥४२॥
न योजनां कर्तुमीशो देवेशं स्तौमि मूढधीः। [2]वेदा न शक्ता यं स्तोतुं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥४३॥
वाग्बुद्धिमनसां दूरं सारात्सारं परात्परम्। [3]ज्ञानमात्रेण साध्यं च सिद्धं सिद्धैर्निषेवितम् ॥४४॥
यमाकाशमिवाऽद्यन्तमध्यहीनं तथाऽव्ययम्। विश्वतन्त्रमतन्त्रं च स्वतन्त्रं तन्त्रबीजकम् ॥४५॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यमतिसाध्यं कृपानिधिम्। त्राहि मां करुणासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम् ॥४६॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। स्वप्नेऽप्यदृष्टं भक्तैश्चाधुना पश्यामि चक्षुषा ॥४७॥
शक्रादयः सुरगणाः कलया यस्य संभवाः। चराचराः कलांशेन तं नमामि महेश्वरम् ॥४८॥

ष्टित थे ॥३१-३७॥ अनन्तर परशुराम ने सादर उन्हें प्रणाम किया उनके बाँयें भाग में कार्तिकेय, दाहिने गणेश्वर, नन्दीश्वर, महाकाल एवं वीरभद्र को उनके सामने बैठे हुए देखा। उनके अंक में उनकी पत्नी शैलराज पुत्री गौरी बैठी थीं। उन्होंने उन सबकों भक्तिपूर्वक बड़ी प्रसन्नता से शिर से प्रणाम किया और शिव को देखकर अति सन्तुष्ट होकर उनकी स्तुति करना आरम्भ किया। दीन, आँखों में आँसू भरे एवं अतिकातर राम हाथ जोड़कर शान्त भाव से शोकनाशन शिव का गद्गद्वाणी द्वारा गुणगान करने लगे ॥३८-४१॥

परशुराम बोले—हे ईश! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, किन्तु स्तुति करने में असमर्थ हूँ। तथा अक्षर (अविनाशी), अक्षयबीज और निरीह (इच्छारहित) की स्तुति ही क्या करूँ ॥४२॥ मैं उसकी योजना भी नहीं कर सकता ऐसा मूढ़बुद्धि मैं देवाधीश्वर की स्तुति करता हूँ। जिसकी स्तुति वेद नहीं कर सकते, तो अन्य कौन तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ हो सकता है ॥४३॥ तुम वाणी, बुद्धि और मन से अति दूर, सारभाग के भी सारभाग, परे से परे, केवल ज्ञानमात्र से साध्य होने वाले, सिद्ध और सिद्धों से सुसेवित हो ॥४४॥ आकाश की भाँति आदि, मध्य और अन्त से रहित हो, अविनाशी हो, विश्व के तन्त्र, तन्त्रसे दूर, स्वतन्त्र, तन्त्र के बीज, ध्यान से असाध्य, दुराराध्य अतिसाध्य और कृपानिधान हो, अतः हे करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो! मैं अतिदीन हूँ, मेरी रक्षा करो ॥४५-४६॥ आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन सुजीवन हुआ, क्योंकि भक्तगण जिसे स्वप्न में भी नहीं देख पाते हैं, मैं उन्हें इस समय अपनी आँखों देख रहा हूँ ॥४७॥ इन्द्र आदि देवगण जिसकी कला से उत्पन्न हैं और चर-अचर जगत् जिसके कलांश से, उस महेश्वर को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥४८॥ जो स्त्रीरूप, नपुंसकरूप एवं पौरुष धारण

---

१ क. °क्षरक्षरबी°। २ क. देवा। ३ क. °नबुद्ध्यवसा°।

स्त्रीरूपं क्लीबरूपं च पौरुषं च बिभर्ति यः। सर्वाधारं सर्वरूपं तं नमामि महेश्वरम् ॥४९॥
यं भास्करस्वरूपं च शशिरूपं हुताशनम्। जलरूपं वायुरूपं तं नमामि महेश्वरम् ॥५०॥
अनन्तविश्वसृष्टीनां संहर्तारं भयंकरम्। क्षणेन लीलामात्रेण तं नमामि महेश्वरम् ॥५१॥
इत्येवमुक्त्वा स भृगुः पपात चरणाम्बुजे। आशिषं च ददौ तस्मै सुप्रसन्नो बभूव सः ॥५२॥
जामदग्न्यकृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥५३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामस्य कैलाशगमनं
नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः।

शंकर उवाच

कस्त्वं बटो कस्य पुत्रः क्व वासः स्तवनं कथम्। किं वा तेऽहं करिष्यामि वाञ्छितं वद सांप्रतम् ॥१॥

पार्वत्युवाच

शोकाकुलं त्वां पश्यामि विमनस्कं सुविस्मितम्। वयसाऽतिशिशुं [1]शान्तं गुणेन गुणिनां वरम् ॥२॥

करता है तथा सबका आधार और सर्वरूप है, उस महेश्वर को मैं नमस्कार कर हा हूँ॥४९॥ जो भास्कर-स्वरूप, चन्द्ररूप, अग्निरूप, जलरूप और वायुरूप है उस महेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥५०॥ अनन्त विश्व-सृष्टि का लीला की भाँति क्षणमात्र में संहार करने वाले, भीषण महेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥५१॥ इतना कहकर भृगु उनके चरण-कमल पर गिर पड़े। उन्होंने सुप्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया ॥५२॥ जामदग्न्य-रचित इस स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह समस्त पाप से मुक्त होकर शिवलोक को जाता है ॥५३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम का कैलाशगमनवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२९॥

अध्याय ३०

शंकर बोले—हे बच्चे! तुम कौन हो, किसके पुत्र हो, कहाँ घर है, (हमारी) स्तुति क्यों कर रहे हो। बताओ, तुम्हारी क्या अभिलाषा है? ॥१॥

पार्वती बोलीं—मैं तुम्हें शोकव्याकुल, उदासीन और अति विस्मित देखती हूँ। तुम्हारी अवस्था छोटे बच्चे की है, किन्तु तुम शान्त एवं गुण से गुणवानों में श्रेष्ठ हो ॥२॥

---

१ क. दान्तं।

भृगुरुवाच

जमदग्निसुतोऽहं च भृगुवंशसमुद्भवः । रेणुकाऽम्बा मे परशुरामोऽहं नामतः प्रभो ॥३॥
क्रीणीहि मां दयासिन्धो विद्यापण्येन किंकरम् । त्वामीश शरणापन्नं रक्ष मां दीनवत्सल ॥४॥
मृगयामागतं भूपं पिता मे चोपवासिनम् । चकाराऽऽतिथ्यमानीय कपिलादत्तवस्तुभिः ॥५॥
राजा तं कपिला लोभाद्घातयामास मन्दधीः । कपिला तं मृतं दृष्ट्वा गोलोकं च जगाम सा ॥६॥
माताऽनुगमनं चक्रे ह्यनाथोऽहं च सांप्रतम् । त्वं मे पिता शिवा माता रक्ष मां पुत्रवत्प्रभो ॥७॥
मया कृता प्रतिज्ञा च शोकेनैवातिदुष्करा । त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति ॥८॥
कार्तवीर्यं हनिष्यामि समरे तातघातकम् । इत्येतत्परिपूर्णं मे भगवान्कर्तुमर्हति ॥९॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः । बभूवाऽऽनम्रवक्त्रश्च सा च शुष्कौष्ठतालुका ॥१०॥

पार्वत्युवाच

तपस्विन्विप्रपुत्र क्ष्मां निर्भूपां कर्तुमिच्छसि । त्रिःसप्तकृत्वः कोपेन साहसस्ते महान्बटो ॥११॥
हन्तुमिच्छसि निःशस्त्रः सहस्रार्जुनमीश्वरम् । भ्रूभङ्गलीलया यस्य रावणस्य पराजयः ॥१२॥
तस्मै प्रदत्तं दत्तेन श्रीहरेः कवचं बटो । शक्तिरव्यर्थरूपा च यया ते हिंसितः पिता ॥१३॥
हरेर्मन्त्रं संस्तवनं ध्यायते च दिवानिशम् । को वा शक्नोति तं हन्तुं न पश्यामीह भूतले ॥१४॥

भृगु बोले—हे प्रभो ! मैं जमदग्नि का पुत्र एवं भृगु वंश में उत्पन्न हूँ। रेणुका मेरी माता हैं और परशुराम मेरा नाम है ॥३॥ हे दयासिन्धो ! मुझे विद्या प्रदान करके आप अपने सेवक बना लें। हे ईश! हे दीनवत्सल ! मैं आपकी शरण में हूँ, मेरी रक्षा कीजिये ॥४॥ मृगया (शिकार) खेलने के लिए आये हुए राजा को भूखा देखकर मेरे पिता ने कपिला की दी हुई वस्तु से उसका आतिथ्य-सत्कार किया ॥५॥ अनन्तर उस मूर्ख राजा ने कपिला के लिए लालायित होकर मेरे पिता को मार डाला। कपिला उन्हें मृतक देखकर गोलोक चली गयी ॥६॥ माता भी पिता के साथ चली गयी, इस समय मैं अनाथ हूँ। अतः हे प्रभो ! तुम पिता हो और शिवा माता हैं, पुत्र की भाँति मेरी रक्षा करो ॥७॥ मैंने शोकाकुल होकर अति दुष्कर प्रतिज्ञा की है कि—एक्कीस बार इस पृथ्वी को मैं राजाओं से शून्य कर दूँगा और युद्ध में उस कार्तवीर्य्य को नष्ट कर दूंगा, जिसने मेरे पिता का हनन किया है ॥७॥ इस प्रतिज्ञा को भगवान् पूरा करा दें ॥८-९॥ ब्राह्मण की बात सुनकर शिव ने दुर्गा के मुख की ओर देखा और नीचे मुख कर लिया। पार्वती के भी ओंठ और तालू सूख गए ॥१०॥

पार्वती बोलीं—हे तपस्विन् ! ब्राह्मण के पुत्र तुम कोप से इक्कीस बार पृथ्वी को राजा से शून्य करना चाहते हो। हे बटुक ! यह तुम्हारा बहुत बड़ा साहस है। अधीश्वर सहस्रार्जुन को निःशस्त्र होकर मारना चाहते हो, जिसके भौंह टेढ़ी करने पर रावण का पराजय हो गया था ॥११-१२॥ हे बटुक ! दत्तात्रेय ने उसे भगवान् का कवच प्रदान किया है और वह शक्ति कभी भी व्यर्थ नहीं होती है, जिससे उसने तुम्हारे पिता को मारा है ॥१३॥ जो रात-दिन भगवान के मंत्र का जाप और उनकी स्तुति का पाठ करता है, उसे भूतल पर कौन मार

अये विप्र गृहं गच्छ किं करिष्यति शंकरः। अन्ये भूपाश्च मद्भृत्याः का भीस्तेषां मयि स्थिते ॥१५॥

भद्रकाल्युवाच

अये विप्रबटो जाल्म निर्भूपां कर्तुमिच्छसि। यथा हि वामनश्चन्द्रं करेणाऽहर्तुमिच्छति ॥१६॥
कृतयज्ञान्महापुण्यान्महाबलपराक्रमान्। दिगम्बरसहायेन मद्भृत्यान्हन्तुमिच्छसि ॥१७॥
स तयोर्वचनं श्रुत्वा रुरोदोच्चैश्च शोकतः। सहसा पुरतस्तेषां प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः ॥१८॥
विप्रस्य रोदनं श्रुत्वा शंकरः करुणानिधिः। पश्यन्दुर्गां च कालीं च ज्ञात्वाऽऽशयमथो विभुः ॥१९॥
तयोरनुमतिं प्राप्य सर्वेशो भक्तवत्सलः। जमदग्निसुतं सद्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२०॥

शंकर उवाच

अद्यप्रभृति हे वत्स त्वं मे पुत्रसमो महान्। दास्यामि मन्त्रं गुह्यं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२१॥
एवंभूतं च कवचं दास्यामि परमाद्भुतम्। लीलया मत्प्रसादेन कार्तवीर्यं हनिष्यसि ॥२२॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं द्विज। जगत्ते यशसा पूर्णं भविष्यति न संशयः ॥२३॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ मन्त्रं सुदुर्लभम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥२४॥
स्तवं पूजाविधानं च पुरश्चरणपूर्वकम्। मन्त्रसिद्धेरनुष्ठानं यथावन्नियमक्रमम् ॥२५॥
सिद्धिस्थानं कालसंख्यां कथयामास नारद। वेदवेदाङ्गादिकं च पाठयामास तत्क्षणम् ॥२६॥

सकता है ? मैं (ऐसे व्यक्ति को) नहीं देखती हूँ ॥१४॥ हे विप्र ! अतः तुम घर चले जाओ। (इसमें) शंकर क्या कर सकेंगे ? अन्य राजा लोग मेरे सेवक हैं, मेरे रहते उन्हें क्या भय है ? ॥१५॥

भद्रकाली बोलीं—हे ब्राह्मणबटुक ! तुम मूर्ख हो, जो पृथ्वी को राजशून्य करना चाहते हो। यह तो वैसा ही है जैसे कोई बौना हाथ से चन्द्रमा को पकड़ना चाहता हो ॥१६॥ क्या तुम अनेक यज्ञों को सुसम्पन्न करने वाले, महापुण्यात्मा एवं महापराक्रमी मेरे सेवकों को शिव की सहायता से मारना चाहते हो ? ॥१७॥ परशुराम ने उन दोनों की बातें सुनकर शोकव्याकुल होकर अति ऊँचे स्वर से रोदन किया और उन लोगों के सामने ही सहसा प्राण त्याग देने को तैयार हो गये ॥१८॥ ब्राह्मण का रोदन सुनकर विभु एवं करुणानिधान शिव ने काली और दुर्गा की ओर देखा और उनका आशय जानकर दोनों की अनुमति से सर्वेश्वर एवं भक्तवत्सल शिव ने परशुराम से तुरन्त कहना आरम्भ किया ॥१९-२०॥

शंकर बोले—हे वत्स ! आज से तुम मेरे महान् पुत्र के समान हो गये। मैं तुम्हें तीनों लोकों में दुर्लभ गुप्त मन्त्र दूंगा ॥२१॥ और उसी भाँति परम अद्भुत कवच भी दूंगा मेरे प्रसाद से तुम लीला की भाँति कार्तवीर्य्य का हनन कर सकोगे ॥२२॥ हे द्विज ! पृथ्वी को इक्कीस बार निर्भूप करोगे, जिससे संसार में तुम्हारा यश पूर्णरूप से फैलेगा, इसमें संशय नहीं। इतना कहकर शिव ने उन्हें अति दुर्लभ मंत्र, त्रैलोक्यविजय नामक परम अद्भुत कवच, स्तोत्र, पूजाविधान, पुरश्चरणपूर्वक मंत्रसिद्धि का अनुष्ठान और यथोचित नियम-क्रम भी बताया ॥२३-२५॥ हे नारद ! सिद्धि-स्थान और समय बताते हुए उन्होंने उसी क्षण समस्त वेद, वेदांग आदि पढ़ा दिये ॥२६॥

नागपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रं च सुदुर्लभम् । नारायणास्त्रमाग्नेयं वायव्यं वारुणं तथा ॥२७॥
गान्धर्वं गारुडं चैव जृम्भणास्त्रं तथैव च। गदां शक्तिं च परशुं शूलमव्यर्थमुत्तमम् ॥२८॥
नानाप्रकारशस्त्रास्त्रं मन्त्रं च विधिपूर्वकम्। शस्त्रास्त्राणां च संहारं तूणी चाक्षयसायकौ ॥२९॥
आत्मरक्षणसंधानं संग्रामविजयक्रमम् । मायायुद्धं च विविधं हुंकारं मन्त्रपूर्वकम् ॥३०॥
रक्षणं च स्वसैन्यानां परसैन्यविमर्दनम् । नानाप्रकारमतुलमुपायं [1]रणसंकटे ॥
संहारे मोहिनीं विद्यां ददौ मृत्युहरां हरः ॥३१॥
स्थित्वा चिरं गुरोर्वासे सर्वविद्यां विबोध्य सः । तीर्थे कृत्वा मन्त्रसिद्धिं तांश्च नत्वा जगाम सः ॥३२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० परशुरामस्य शिवदत्तास्त्रशस्त्रादिप्राप्तिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कं मन्त्रं भगवान्हरः । कृपया परशुरामाय किं स्तोत्रं कवचं ददौ ॥१॥
को वाऽस्य मन्त्रस्याऽऽराध्यः किं फलं कवचस्य च । स्तवनस्य फलं किं वा तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥२॥

नागपाश, पाशुपत, अतिदुर्लभ ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, आग्नेय, वायव्य, वारुण, गान्धर्व, गारुड़, जृम्भणास्त्र, गदा, शक्ति, परशु, और व्यर्थ न होने वाला शूल प्रदान किया ॥२७-२८॥ विधान समेत अनेक भाँति के शस्त्रास्त्र, मंत्र, शस्त्रास्त्रों की संहार-क्रिया, तरकस, अविनाशी बाण, अपनी रक्षा का उपाय, संग्राम में विजय करने का क्रम, विविध भाँति का माया-युद्ध, मंत्रपूर्वक हुंकार, अपने सैनिकों की रक्षा और शत्रु-सेना का नाश, रण में संकट उपस्थित होने पर अनेक भाँति के अनुपम उपाय, संहार में मृत्युनाशिनी मोहिनी विद्या भी प्रदान की ॥२९-३१॥ गुरु के यहाँ चिरकाल तक रहकर, समस्त विद्याओं को सीख कर और तीर्थ में मन्त्रसिद्धि करने के उपरांत उन सबको नमस्कार करके परशुराम चले गये ॥३२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम को शिव द्वारा अस्त्र-शस्त्रादि की प्राप्ति का वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

अध्याय ३१

नारद बोले—हे भगवन्! भगवान् हर ने कृपया परशुराम को कौन मन्त्र, कौन स्तोत्र और कौन कवच प्रदान किया, उस मन्त्र का आराध्य देव कौन है, कवच का क्या फल है और उस स्तोत्र का क्या फल है? मुझे सुनने की इच्छा है, आप बताएँ ॥१-२॥

१क. प्राणं०।

नारायण उवाच

मन्त्राराध्यो हि भगवान्परिपूर्णतमः स्वयम्। गोलोकनाथः श्रीकृष्णो गोपगोपीश्वरः प्रभुः ॥३॥
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्। स्तवराजं महापुण्यं भूतियोगसमुद्भवम् ॥४॥
मन्त्रकल्पतरुं नाम सर्वकामफलप्रदम्। ददौ परशुरामाय रत्नपर्वतसंनिधौ ॥५॥
स्वयंप्रभानदीतीरे पारिजातबनान्तरे। आश्रमे देवलोकस्य माधवस्य च संनिधौ ॥६॥

महादेव उवाच

वत्साऽऽगच्छ महाभाग भृगुवंशसमुद्भव। पुत्राधिकोऽसि प्रेम्णा मे कवचग्रहणं कुरु ॥७॥
शृणु राम प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डे परमाद्भुतम्। त्रैलोक्यविजयं नाम श्रीकृष्णस्य जयावहम् ॥८॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके राधिकाश्रमे। रासमण्डलमध्ये च मह्यं वृन्दावने वने ॥९॥
अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। पुण्यात्पुण्यतरं चैव परं स्नेहाद्ददामि ते ॥१०॥
यद्धृत्वा पठनाद्देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। शुम्भं निशुम्भं महिषं रक्तबीजं जघान ह ॥११॥
यद्धृत्वाऽहं च जगतां संहर्ता सर्वतत्त्ववित्। अवध्यं त्रिपुरं पूर्वं दुरन्तमपि लीलया ॥१२॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा ससृजे सृष्टिमुत्तमाम्। यद्धृत्वा भगवाञ्छेषो विधत्ते विश्वमेव च ॥१३॥
यद्धृत्वा कूर्मराजश्च शेषं धत्ते हि लीलया। यद्धृत्वा भगवान्वायुर्विश्वाधारो विभुः स्वयम् ॥१४॥

नारायण बोले—परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण, जो गोलोक के स्वामी, गोप-गोपियों के ईश्वर एवं प्रभु हैं, स्वयं इसके देवता हैं ॥३॥ परम अद्भुत त्रैलोक्य विजय नामक कवच, ऐश्वर्य योग से उत्पन्न महापुण्य स्तवराज, और कल्पतरु नामक मंत्र, जो समस्त कामनाओं का फल प्रदान करता है, उन्होंने सुमेरु पर्वत के समीप स्वयंप्रभा नदी के किनारे पारिजात बन के बीच देवलोक के आश्रम में माधव के समीप परशुराम को प्रदान किया था ॥४-६॥

शंकर बोले—हे वत्स! हे भृगु-वंश में उत्पन्न महाभाग! आओ, यह कवच ग्रहण करो। प्रेमतः तुम मेरे पुत्र से भी अधिक प्रिय हो ॥७॥ हे राम! मैं तुम्हें भगवान् श्रीकृष्ण का त्रैलोक्यविजय नामक कवच बता रहा हूँ, जो समस्त ब्रह्माण्ड में परम अद्भुत एवं विजयप्रद है, सुनो। पूर्व समय में भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक में राधिकाश्रम के रासमण्डल के मध्य वृन्दावन नामक वन में मुझे यह प्रदान किया था। यह अति गुह्यतर, तत्त्वरूप, सम्पूर्ण मंत्र-समूह का शरीर एवं पुण्य से पुण्यतर है; परम स्नेह के नाते मैं तुम्हें बता रहा हूँ ॥८-१०॥ इसके धारण और पाठ करने से ईश्वरी मूल प्रकृति देवी ने शुम्भ, निशुम्भ, महिषासुर एवं रक्तबीज का वध किया था ॥११॥ इसके धारण करने से मैं समस्त तत्त्वों का वेत्ता एवं समस्त जगत् का संहर्ता हुआ हूँ। और मैंने दुर्द्धर्ष त्रिपुरासुर का इसीसे अनायास वध किया था ॥१२॥ इसके धारण और पाठ करने से ब्रह्मा ने उत्तम सृष्टि की रचना की तथा इसके धारण करने से भगवान् शेष समस्त विश्व का धारण करते हैं ॥१३॥ इसके धारण करने से कच्छपराज लीला पूर्वक शेष को धारण करते हैं। इसे धारण कर वायु समस्त विश्व

धृत्वा वरुणः सिद्धः कुबेरश्च धनेश्वरः । धृत्वा पठनादिन्द्रो देवानामधिपः स्वयम् ॥१५॥
धृत्वा भाति भुवने तेजोराशिः स्वयं रविः । धृत्वा पठनाच्चन्द्रो महाबलपराक्रमः ॥१६॥
अगस्त्यः सागरान्सप्त धृत्वा पठनात्पपौ । चकार तेजसा जीर्णं दैत्यं वातापिसंज्ञकम् ॥१७॥
धृत्वा पठनाद्देवी सर्वाधारा वसुंधरा । धृत्वा पठनात्पूता गङ्गा भुवनपावनी ॥१८॥
धृत्वा जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां वरः । सर्वविद्याधिदेवी सा यच्च धृत्वा सरस्वती ॥१९॥
धृत्वा जगतां लक्ष्मीरत्नदात्री परात्परा । धृत्वा पठनाद्वेदान्सावित्री सा सुषाव च ॥२०॥
वेदाश्च धर्मवक्तारो धृत्वा पठनाद्भृगो । धृत्वा पठनाच्छुद्धस्तेजस्वी हव्यवाहनः ॥
सनत्कुमारो भगवान्यद्धृत्वा ज्ञानिनां वरः । ॥२१॥
दातव्यं कृष्णभक्ताय साधवे च महात्मने । शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥२२॥
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो रासेश्वरः स्वयम् ॥२३॥
त्रैलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः । परात्परं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२४॥
प्रणवो मे शिरः पातु श्रीकृष्णाय नमः सदा । पायात्कपालं कृष्णाय स्वाहा पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥२५॥
कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्ण स्वाहेति तारकम् । हरये नम इत्येवं भ्रूलतां पातु मे सदा ॥२६॥
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु संततम् । गोपालाय नमो गण्डौ पातु मे सर्वतः सदा ॥२७॥

का आधार और व्यापक हुआ है ॥१४॥ इसके धारण मात्र से वरुण सिद्ध हो गये, कुबेर धनाधीश हुए और इसके धारण तथा पाठ करने से इन्द्र देवों के स्वयं अधीश्वर हुए हैं ॥१५॥ इसे धारण कर सूर्य स्वयं तेजोराशि होकर लोकों में सुशोभित होते हैं। इसके धारण एवं पाठ करने से चन्द्र महाबली और पराक्रमी हो गये ॥१६॥ इसे धारण कर अगस्त्य ने सातों सागरों को पान कर लिया था और अपने तेज से वातापी राक्षस को नष्ट किया था ॥१७॥ इसके धारण एवं पाठ करने से देवी वसुन्धरा समस्त का आधार हुई है। इसके धारण एवं पाठ से गंगा स्वयं पवित्र होकर लोकपावनी हो गयीं ॥१८॥ इसे धारण कर धर्म धार्मिक जनों में श्रेष्ठ एवं जगत् के साक्षी हुए हैं, इसे धारण कर सरस्वती सम्पूर्ण विद्याओं की अधीश्वरी देवी और लक्ष्मी रत्न देने वाली एवं श्रेष्ठ से श्रेष्ठ हुई हैं। इसके धारण और पाठ करने से सावित्री ने वेदों को उत्पन्न किया, तथा हे भृगो ! इसे धारण कर वेदगण धर्म के वक्ता हुए। इसे धारण कर पाठ करने से अग्नि शुद्ध एवं तेजस्वी हुए, और इसे धारण कर भगवान् सनत्कुमार श्रेष्ठ ज्ञानी हो गये ॥१९-२१॥ इसलिए इसे भगवान् कृष्ण के भक्त को, जो साधु महात्मा हो, देना चाहिए। क्योंकि शठ एवं परशिष्य को देने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥२२॥

इस त्रैलोक्यविजय नामक कवच के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द और स्वयं रासेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) देवता हैं। त्रैलोक्य-विजय-प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है। यह कवच परे से परे और तीनों लोकों में दुर्लभ है। 'ओं श्रीकृष्णाय नमः' सदा मेरे शिर की रक्षा करे, पांच अक्षर वाले 'कृष्णाय स्वाहा' कपाल की रक्षा करे ॥२३-२५॥ कृष्ण दोनों नेत्रों की रक्षा करें, 'कृष्णाय स्वाहा' पुतलियों की रक्षा करे। 'हरये नमः' सदा मेरी भौंह की रक्षा करे ॥२६॥ 'ओं गोविन्दाय स्वाहा' निरन्तर नासिका की रक्षा करे, 'गोपालाय नमः' सदा दोनों कपोलों की

ॐ नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णौ पातु सदा मम। ॐ कृष्णाय नमः शश्वत्पातु मेऽधरयुग्मकम् ॥२८॥
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति दन्तौघं मे सदाऽवतु। पातु कृष्णाय दन्ताधो दन्तोर्ध्वं क्लीं सदाऽवतु ॥२९॥
ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातु मे सदा। रासेश्वराय स्वाहेति तालुकं पातु मे सदा ॥३०॥
राधिकेशाय स्वाहेति कण्ठं पातु सदा मम। नमो गोपाङ्गनेशाय वक्षः पातु सदा मम ॥३१॥
ॐगोपेशाय स्वाहेति स्कन्धं पातु सदा मम। नमः किशोरवेषाय स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥३२॥
उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय[1] नमः सदा। ॐ क्लीं कृष्णाय स्वाहेति करौ पातु सदा मम ॥३३॥
ॐ विष्णवे नमो बाहुयुग्मं पातु सदा मम। ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा नखरं पातु मे सदा ॥३४॥
ॐ नमो नारायणायेति नखरन्ध्रं सदाऽवतु। ॐ श्रीं[2] क्लीं पद्मनाभाय नाभिं पातु सदा मम ॥३५॥
ॐ सर्वेशाय स्वाहेति कङ्कालं पातु मे सदा। ॐ गोपीरमणाय स्वाहा नितम्बं पातु मे सदा ॥३६॥
ॐ गोपीनां प्राणनाथाय पादौ पातु सदा मम ॥३७॥
ॐ केशवाय स्वाहेति मम केशान्सदाऽवतु। नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरन्ध्रं सदाऽवतु ॥३८॥
ॐ माधवाय स्वाहेति मे लोमानि सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सर्वं सदाऽवतु ॥३९॥
परिपूर्णतमः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदाऽवतु। स्वयं गोलोकनाथो मामाग्नेय्यां दिशि रक्षतु ॥४०॥

रक्षा करे ॥२७॥ 'ओं नमो गोपांगनेशाय' मेरे कानों की सदा रक्षा करे और 'ओं कृष्णाय नमः' दोनों होठों की रक्षा करे ॥२८॥ 'ओं गोविन्दाय स्वाहा' मेरी दंतपंक्तियों की रक्षा करे, 'कृष्णाय स्वाहा' दांतों के निचले भाग और 'क्लीं' दाँतों के ऊपरी भाग की रक्षा करे ॥२९॥ 'ओं श्री कृष्णाय स्वाहा' सदा मेरी जिह्वा की रक्षा करे, 'रासेश्वराय स्वाहा' सदा मेरे तालु की रक्षा करे ॥३०॥ 'राधिकेशाय स्वाहा' सदा मेरे कण्ठ की रक्षा करे। 'नमो गोपांगनेशाय' मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे ॥३१॥ 'ओं गोपेशाय स्वाहा' सदा मेरे कन्धे की रक्षा करे' 'नमः किशोरवेषाय स्वाहा' मेरे पृष्ठ की रक्षा करे ॥३२॥ 'मुकुन्दाय नमः' मेरे उदर की नित्य रक्षा करे, 'ओं ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहा' सदा मेरे हाथों की रक्षा करे ॥३३॥ 'ओं विष्णवे नमः' मेरी बाहुओं की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं भगवते स्वाहा' सदा मेरे नखों की रक्षा करे ॥३४॥ 'ओं नमो नाराणाय' सदा नखच्छिद्रों की रक्षा करे। 'ओं श्रीं क्लीं पद्मनाभाय' सदा मेरी नाभी की रक्षा करे। ॥३५॥ 'ओं सर्वेशाय स्वाहा' सदा मेरे कंकाल की रक्षा करे। ओं 'गोपीरमणाय स्वाहा' मेरे नितम्ब की रक्षा करे ॥३६॥ 'ओं गोपीनां प्राणनाथाय' सदा मेरे चरण की रक्षा करे ॥३७॥ 'ओं केशवाय स्वाहा' सदा मेरे केशों की रक्षा करे। 'नमः कृष्णाय स्वाहा' सदा ब्रह्मरन्ध्र की रक्षा करे ॥३८॥ 'ओं माधवाय स्वाहा' सदा मेरे लोमों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सदा सब की रक्षा करे ॥३९॥ परिपूर्णतम कृष्ण सर्वदा पूर्वदिशा में मेरी रक्षा करे, स्वयं गोलोकनाथ अग्निकोण में मेरी रक्षा करे ॥४०॥ पूर्णब्रह्मस्वरूप सदा दक्षिण में मेरी रक्षा करें। नैर्ऋत्य में कृष्ण मेरी

---

१ क. मुक्तिदाय नमो नमः। २ ख. ह्रीं ह्रीं।

पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदाऽवतु। नैर्ऋत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातु मां हरिः ॥४१॥
गोविन्दः पातु मां शश्वद्वायव्यां दिशि नित्यशः। उत्तरे मां सदा पातु रसिकानां शिरोमणिः॥४२॥
ऐशान्यां मां सदा पातु वृन्दावनविहारकृत्। वृन्दावनीप्राणनाथः पातु मामूर्ध्वदेशतः ॥४३॥
सदैव माधवः पातु बलिहारी महाबलः। जले स्थले चान्तरिक्षे नृसिंहः पातु मां सदा ॥४४॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत्पातु मां माधवः सदा। सर्वान्तरात्मा निर्लिप्तः पातु मां सर्वतो विभुः ॥४५॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥४६॥
मया श्रुतं कृष्णवक्त्रात्प्रवक्तव्यं न कस्यचित्। गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः ॥४७॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः। स च भक्तो वसेद्यत्र लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥४८॥
यदि स्यात्सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो भवेत्तु सः। निश्चितं कोटिवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥४९॥
राजसूयसहस्राणि वाजपेयशतानि च। अश्वमेधायुतान्येव नरमेधायुतानि च ॥५०॥
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा। त्रैलोक्यविजयस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥५१॥
व्रतोपवासनियमं स्वाध्यायाध्यनं तपः। स्नानं च सर्वतीर्थेषु नास्यार्हति कलामपि ॥५२॥
सिद्धत्वममरत्वं च दासत्वं श्रीहरेरपि। यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वं प्राप्नोति निश्चितम् ॥५३॥
स भवेत्सिद्धकवचो दशलक्षं जपेत्तु यः। यो भवेत्सिद्धकवचः सर्वज्ञः स भवेद्ध्रुवम् ॥५४॥

रक्षा करें, पश्चिम में हरि मेरी रक्षा करें ॥४१॥ गोविन्द वायव्यकोण में मेरी निरन्तर रक्षा करें, रसिकों के शिरोमणि सदा उत्तर में मेरी रक्षा करें ॥४२॥ वृन्दावनविहारी सदा ऐशान्यकोण में मेरी रक्षा करे। वृन्दावनीप्राणनाथ सदा उर्ध्वदेश में मेरी रक्षा करें ॥४३॥ बलिहारी एवं महाबलवान् माधव मेरी सदैव रक्षा करें। जल, स्थल एवं आकाश में सदा नृसिंह मेरी रक्षा करें ॥४४॥ सदा सोते-जागते माधव मेरी निरन्तर रक्षा करें। सर्वान्तरात्मा विभु, जो निर्लिप्त रहते हैं, मेरी चारों ओर से रक्षा करें ॥४५॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने त्रैलोक्यविजय नामक कवच, जो समस्त मन्त्रसमुदाय का शरीर और परम अद्भुत है, तुम्हें बता दिया ॥४६॥ मैंने भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से यह सुना है, इसलिए किसी को न बताना। विधिपूर्वक गुरु की अर्चना करके जो इस कवच को कण्ठ में या दाहिनी बाहु में धारण करता है, वह भी विष्णु ही है, इसमें संशय नहीं। वह भक्त जहाँ निवास करता है वहाँ लक्ष्मी सरस्वती सदा निवास करती हैं ॥४७-४८॥ यदि कवच सिद्ध हो जाता है, तो वह जीवन्मुक्त होता है और करोड़ों वर्षों की पूजा का फल उसे निश्चित प्राप्त होता है ॥४९॥ सहस्र राजसूय, सौ वाजपेय, दश सहस्र अश्वमेध, दस सहस्र नरमेध, सभी महादान और निखिल पृथ्वी की प्रदक्षिणा के फल इस त्रैलोक्यविजय नामक कवच की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥५०-५१॥ व्रत, उपवास, नियम, स्वाध्याय, अध्ययन, तप और समस्त तीर्थों के स्नान इसकी कला के भी समान नहीं है ॥५२॥ जो सिद्धकवच हो जाता है, तो उसे सिद्धत्व, अमरत्व और श्रीहरि का दासत्व आदि सब कुछ निश्चित प्राप्त होता है ॥५३॥ जो दश लाख इसका जप करता है, वह सिद्धकवच एवं सर्वज्ञ होता है ॥५४॥ इस कवच को बिना जाने जो भगवान् की आराधना करता

इदं कवचमज्ञात्वा भजेत्कृष्णं सुमन्दधीः। कोटिकल्पं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥५५॥
गृहीत्वा कवचं वत्स महीं निःक्षत्रियां कुरु। त्रिःसप्तकृत्वो निःशङ्कः सदानन्दो हि लीलया ॥५६॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च पुत्रक। एवं भूतं च कवचं न देयं प्राणसंकटे ॥५७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामाय श्रीकृष्णकवचप्रदानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

भृगुरुवाच

संप्राप्तं कवचं नाथ शश्वत्सर्वाङ्गरक्षणम्। सुखदं मोक्षदं सारं शत्रुसंहारकारणम् ॥१॥
अधुना भगवन्मन्त्रं स्तोत्रं पूजाविधिं प्रभो। देहि मह्यमनाथाय शरणागतपालक ॥२॥

महादेव उवाच

ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च। स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण भज गोपीश्वरं प्रभुम् ॥३॥
मन्त्रेषु मन्त्रराजोऽयं महान्सप्तदशाक्षरः । सिद्धोऽयं पञ्चलक्षेण जपेन मुनिपुंगव ॥४॥

है, वह अतिमन्दबुद्धि (मूर्ख) है और करोड़ों कल्प तक जपा जाने पर भी उसका मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होता है ॥५५॥ हे वत्स! इस कवच को ग्रहण कर पृथ्वी को निःशंक लीला की भाँति इक्कीस बार क्षत्रियरहित करो और सदा आनन्द से रहो ॥५६॥ हे पुत्रक! राज्य दे देना, शिर दे देना तथा प्राण भी दे देना पर, प्राण संकट उपस्थित होने पर भी यह कवच कभी न देना ॥५७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम को श्रीकृष्ण का कवच प्रदान नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

अध्याय ३२

भृगु बोले—हे नाथ! निरन्तर सर्वांग की रक्षा करने वाला यह कवच मुझे प्राप्त हो गया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक, साररूप एवं शत्रु के संहार करने का कारण है ॥१॥ हे भगवन्! हे प्रभो! अब मुझे मंत्र, स्तोत्र और पूजा विधान बताने की कृपा कीजिये, क्योंकि मैं अनाथ हूँ और आप शरणागत के पालक हैं ॥२॥

महादेव बोले—'ओं श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय स्वाहा' इस मन्त्र से गोपीनाथ प्रभु का पूजन करो ॥३॥ यह सत्रह अक्षरों का महान् मंत्र मंत्रो का राजा है। हे मुनिश्रेष्ठ! पांच लाख जप करने से यह मंत्र सिद्ध होता है ॥४॥

तद्दशांशं च हवनं तद्दशांशा[1]भिषेचनम्। तर्पणं तद्दशांशं च तद्दशांशं च मार्जनम्॥५॥
सुवर्णानां च शतकं पुरश्चरणदक्षिणा। मन्त्रसिद्धस्य पुंसश्च विश्वं करतले मुने॥६॥
शक्तः पातुं समुद्रांश्च विश्वं संहर्तुमीश्वरः। पाञ्चभौतिकदेहेन वैकुण्ठं गन्तुमीश्वरः॥७॥
तस्य संस्पर्शमात्रेण पदपङ्कजरेणुना। पूतानि सर्वतीर्थानि सद्यः पूता वसुंधरा॥८॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु मन्मुखतो मुने। सर्वेश्वरस्य कृष्णस्य भक्तिमुक्तिप्रदायि च॥९॥
नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम्॥१०॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाममनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं तं रत्नभूषणभूषितम्॥११॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पीताम्बरधरं वरम्। वीक्ष्यमाणं च गोपीभिः सस्मिताभिश्च संततम्॥१२॥
प्रफुल्लमालतीमालावनमालाविभूषितम्। दधतं कुन्दपुष्पाढ्यां चूडां चन्द्रकचर्चिताम्॥१३॥
प्रभां क्षिपन्तीं नभसश्चन्द्रतारान्वितस्य च। रत्नभूषितसर्वाङ्गं राधावक्षःस्थलस्थितम्॥१४॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च देवेन्द्रैः परिसेवितम्। ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च श्रुतिभिश्च स्तुतं भजे॥१५॥
ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा चोपचारांस्तु षोडश। दत्त्वा भक्त्या च संपूज्य सर्वज्ञत्वं लभेत्पुमान्॥१६॥
अर्घ्यं पाद्यं चाऽऽसनं च वसनं भूषणं तथा। गामर्घ्यं मधुपर्कं च यज्ञसूत्रमनुत्तमम्॥१७॥

उसका दशांश हवन, उसका दशांश अभिषेचन, उसका दशांश मार्जन और सौ सुवर्ण (की मोहर) पुरश्चरण की दक्षिणा देनी चाहिए। हे मुने! मंत्रसिद्ध हो जाने पर उस पुरुष के हाथ में समस्त विश्व हो जाता है और वह समस्त विश्व का संहार भी करने में समर्थ होता है। इसी पाञ्चभौतिक शरीर से वह वैकुण्ठ जाने में समर्थ होता है और उसके चरणकमल की धूलि का स्पर्श होते ही समस्त तीर्थ एवं निखिल पृथिवी तुरन्त पवित्र हो जाती है॥५-८॥ हे मुने! भगवान् श्रीकृष्ण का सामवेदोक्त ध्यान मेरे मुख से सुनो, जो भक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करता है॥९॥ नवीन मेघ के समान श्याम, नीलकमल की भाँति युगल नयन, शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख, मनोहर मन्दहास तथा करोड़ों काम की भाँति लावण्य से युक्त, मनोहर लीला धाम, रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नों के भूषणों से भूषित, चन्दन-चर्चित सर्वांग, पीताम्बर धारण किये और मन्द मुसुकान करती हुई गोपियाँ से निरन्तर देखे जाते हुए, अत्यन्त विकसित मालती पुष्पों की माला एवं वनमाला धारण किये, चन्द्रक (चन्द्रिका) समेत कुन्द पुष्प भूषित चूडा धारण किये, चन्द्रमा और तारागण से युक्त आकाश की प्रभा को तिरस्कृत करने वाली कान्ति से युक्त, रत्नों से सर्वांग भूषित राधा के वक्षःस्थल पर स्थित, सिद्धेन्द्रगण, मुनिवर्यवृन्द और देवाधीश्वरों से सुसेवित एवं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर द्वारा तथा वेदों द्वारा स्तुत भगवान् की मैं सेवा कर रहा हूँ॥१०-१५॥ इस भाँति ध्यानपूर्वक सोलहो उपचार से भक्तिपूर्वक पूजन करने पर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है॥१६॥ अर्घ्य, पाद्य, आसन, वसन, भूषण, गौ, अर्घ्य, मधुपर्क, परमोत्तम यज्ञसूत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, और पुनः

१क. भोजनम्।

धूपदीपौ च नैवेद्यं पुनराचमनीयकम्। नानाप्रकारपुष्पाणि ताम्बूलं च सुवासितम्॥१८॥
मनोहरं दिव्यतल्पं कस्तूर्यगुरुचन्दनैः। भक्त्या भगवते देयं माल्यं पुष्पाञ्जलित्रयम्॥१९॥
ततः षडङ्गं संपूज्य पश्चात्संपूजयेद्गणम्। श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च॥२०॥
हरिभानुं चन्द्रभानुं सूर्यभानुं सुभानुकम्। पार्षदप्रवरान्सप्त पूजयेद्भक्तिभावतः॥२१॥
गोपीश्वरीं राधिकां च मूलप्रकृतिमीश्वरीम्। कृष्णशक्तिं कृष्णपूज्यां पूजयेद्भक्तिपूर्वकम्॥२२॥
गोपगोपीगणं शान्तं मां ब्रह्माणं च पार्वतीम्। लक्ष्मीं सरस्वतीं पृथ्वीं सर्वदेवं सपार्षदम्॥२३॥
देवषट्कं समभ्यर्च्य पुनः पञ्चोपचारतः। पश्चादेवंक्रमेणैव श्रीकृष्णं पूजयेत्सुधीः॥२४॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। देवषट्कं समभ्यर्च्य चेष्टदेवं च पूजयेत्॥२५॥
गणेशं विघ्ननाशाय व्याधिनाशाय भास्करम्। आत्मनः शुद्धये वह्निं श्रीविष्णुं मुक्तिहेतवे॥२६॥
ज्ञानाय शंकरं दुर्गां परमैश्वर्यहेतवे। संपूजने फलमिदं विपरीतमपूजने॥२७॥
ततः कृत्वा परीहारमिष्टदेवं च भक्तितः। स्तोत्रं च सामवेदोक्तं पठेद्भक्त्या च तच्छृणु॥२८॥

महादेव उवाच

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिः सनातनम्। निर्लिप्तं परमात्मानं नमाम्यखिलकारणम्॥२९॥
स्थूलात्स्थूलतमं देवं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमं परम्। सर्वदृश्यमदृश्यं च स्वेच्छाचारं नमाम्यहम्॥३०॥

आचमन समेत विविध भाँति के पुष्प, सुवासित ताम्बूल, कस्तूरी, अगुरु, चन्दन समेत मनोहर दिव्य शय्या, माला और तीन पुष्पाञ्जलि भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करना चाहिए॥१७-१९॥ अनन्तर षडंग पूजन और गणपूजन करके श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, हरिभानु, चन्द्रभानु, सूर्यभानु, एवं सुभानु इन सातों पार्षद-प्रवरों का भक्तिभाव से पूजन करे॥२०-२१॥ उपरांत गोपियों की अधीश्वरी राधिका की भक्तिपूर्वक पूजा करे,जो मूल प्रकृति, ईश्वरी, भगवान् कृष्ण की शक्ति और उनकी पूज्या हैं॥२२॥ गोप-गोपीगण, शान्त मुझ ब्रह्मा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, पृथ्वी, पार्षद समेत सर्वदेव एवं पांचों उपचारों से छहों देवों की अर्चना करने के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण की इसी क्रम से अर्चना करनी चाहिए॥२३-२४॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती इन छह देवों की पूजा करके इष्टदेव की अर्चना करनी चाहिए॥२५॥ फिर विघ्नविनाशार्थ गणेश की, रोगनाश के लिए भास्कर की, आत्म-शुद्धि के लिए अग्नि की, मुक्त्यर्थ श्री विष्णु की, ज्ञानार्थ शंकर की और परम ऐश्वर्य्य के लिए पार्वती की पूजा करनी चाहिए। इनके पूजन से उपर्युक्त फल प्राप्त होता है और न पूजने से विपरीत फल॥२६-२७॥ अनन्तर परीहार पूर्वक भक्ति से इष्टदेव की पूजा करके सामवेदोक्त स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करे, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो॥२८॥

महादेव बोले—परब्रह्म, परंधाम, परम ज्योति, सनातन एवं निर्लिप्त परमात्मा को मैं नमस्कार कर रहा हूँ॥२९॥ स्थूल से स्थूलतम, सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म, सबको दिखायी देने वाले और अदृश्य स्वेच्छाचारी उस परमदेव को मैं नमस्कार कर रहा हूँ॥३०॥

साकारं च निराकारं सगुणं निर्गुणं [1]प्रभुम् सर्वाधारं च सर्वं च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम् ॥३१॥
अतीव कमनीयं च रूपं निरुपमं विभुम्। करालरूपमत्यन्तं बिभ्रतं प्रणमाम्यहम् ॥३२॥
कर्मणः कर्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्। फलं च फलदातारं सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥३३॥
स्रष्टा पाता च संहर्ता कलया मूर्तिभेदतः। नानामूर्तिः कलांशेन यः पुमांस्तं नमाम्यहम् ॥३४॥
स्वयं प्रकृतिरूपश्च मायया च स्वयं पुमान्। तयोः परः स्वयं शश्वत्तं नमामि परात्परम् ॥३५॥
स्त्रीपुंनपुंसकं रूपं यो बिभर्ति स्वमायया। स्वयं माया स्वयं मायी यो देवस्तं नमाम्यहम् ॥३६॥
तारकं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम् । धारकं[2] सर्वविश्वानां सर्वबीजं नमाम्यहम् ॥३७॥
तेजस्विनां रविर्यो हि सर्वजातिषु वाडवः। नक्षत्राणां च यश्चन्द्रस्तं नमामि जगत्प्रभुम् ॥३८॥
रुद्राणां वैष्णवानां च ज्ञानिनां यो हि शंकरः। नागानां यो हि शेषश्च तं नमामि जगत्पतिम् ॥३९॥
प्रजापतीनां यो ब्रह्मा सिद्धानां कपिलः स्वयम्। सनत्कुमारो मुनिषु तं नमामि जगद्गुरुम् ॥४०॥
देवानां यो हि विष्णुश्च देवीनां प्रकृतिः स्वयम्। स्वायंभुवो मनूनां यो मानवेषु च वैष्णवः॥
नारीणां शतरूपा च बहुरूपं नमाम्यहम् ॥४१॥
ऋतूनां यो वसन्तश्च मासानां मार्गशीर्षकः। एकादशी तिथीनां च नमाम्यखिलरूपिणम् ॥४२॥

साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण, सबका आधार और स्वेच्छा रूप उस सर्वमय प्रभु को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३१॥ अत्यन्त सुन्दर, अनुपम रूप और अत्यन्त करालरूप धारण करने वाले उस विभु (व्यापक) को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३२॥ कर्मों के कर्मरूप और समस्त कर्मों के साक्षी, फलरूप एवं फल के दाता उस सर्वरूप को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३३॥ कला द्वारा मूर्तिभेद से (जगत् का) सर्जन, पालन, संहार करने वाले और अपनी कलाओं के अंश से अनेक भाँति की मूर्ति धारण करने वाले उस पुरुष को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३४॥ जो स्वयं प्रकृति रूप और माया द्वारा स्वयं पुरुष रूप है तथा उन दोनों से निरन्तर परे है, उस परात्पर (देव) को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३५॥ जो अपनी माया द्वारा स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक रूप धारण करता है और स्वयं माया रूप तथा स्वयं मायी (माया करने वाला) है, उस देव को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३६॥ समस्त दुःखों से पार करने वाले, सभी कारणों के कारण, समस्त विश्वों को धारण करने वाले और समस्त के बीज रूप को नमस्कार कर रहा हूँ ॥३७॥ जो तेजस्वियों का सूर्य, समस्त जातियों में ब्राह्मण है और नक्षत्रों में चन्द्रमा रूप है, उस जगत्प्रभु को नमस्कार कर रहा हूँ ॥३८॥ जो रुद्रों, वैष्णवों एवं ज्ञानियों में शंकर और नागों में शेषरूप हैं, उस जगत्पत्ति को नमस्कार कर रहा हूँ ॥३९॥ जो प्रजापतियों में ब्रह्मा, सिद्धों में स्वयं कपिल और मुनियों में सनत्कुमार रूप हैं, उस जगत् के गुरु को नमस्कार कर रहा हूँ ॥४०॥ जो देवों में विष्णु, देवियों में स्वयं प्रकृति रूप, मनुओं में स्वायम्भुवरूप और मनुष्यों में वैष्णव रूप है, तथा स्त्रियों में शतरूपा रूप हैं उस बहुरूपी को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥४१॥ जो ऋतुओं में वसन्त, मासों में मार्गशीर्ष (अगहन) और तिथियों में एकादशी रूप है, उस अखिल रूप को नमस्कार कर रहा हूँ ॥४२॥

१क. परम्। २क. ०रणं सर्वबीजानां सर्वरूपं न०।

सागरः सरितां यश्च पर्वतानां हिमालयः। वसुंधरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमाम्यहम् ॥४३॥
पत्राणां तुलसीपत्रं दारुरूपेषु चन्दनम्। वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्तं नमामि जगत्पतिम् ॥४४॥
पुष्पाणां पारिजातश्च सस्यानां धान्यमेव च। अमृतं भक्ष्यवस्तूनां नानारूपं नमाम्यहम् ॥४५॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां वैनतेयश्च पक्षिणाम्। कामधेनुश्च धेनूनां सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥४६॥
तैजसानां सुवर्णं च धान्यानां यव एव च। यः केसरी पशूनां च वररूपं नमाम्यहम् ॥४७॥
यक्षाणां च कुबेरो यो ग्रहाणां च बृहस्पतिः। दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमामि परं वरम् ॥४८॥
वेदसंघश्च शास्त्राणां पण्डितानां सरस्वती। अक्षराणामकारो यस्तं प्रधानं नमाम्यहम् ॥४९॥
मन्त्राणां विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाह्नवी स्वयम्। इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वश्रेष्ठं नमाम्यहम् ॥५०॥
सुदर्शनं च शस्त्राणां व्याधीनां वैष्णवो ज्वरः। तेजसां ब्रह्मतेजश्च वरेण्यं तं नमाम्यहम् ॥५१॥
बलं यो वै बलवतां मनो वै शीघ्रगामिनाम्। कालः कलयतां यो हि तं नमामि विचक्षणम् ॥५२॥
ज्ञानदाता गुरूणां च मातृरूपश्च बन्धुषु। मित्रेषु जन्मदाता यस्तं सारं प्रणमाम्यहम् ॥५३॥
शिल्पिनां विश्वकर्मा यः कामदेवश्च रूपिणाम्। पतिव्रता च पत्नीनां नमस्यं तं नमाम्यहम् ॥५४॥
प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपरूपो नरेषु च। शालग्रामश्च यन्त्राणां तं विशिष्टं नमाम्यहम् ॥५५॥
धर्मः कल्याणबीजानां वेदानां सामवेदकः। धर्माणां सत्यरूपो यो विशिष्टं तं नमाम्यहम् ॥५६॥
जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु। शब्दरूपश्च गगने तं प्रणम्यं नमाम्यहम् ॥५७॥

जो सरिताओं में सागर, पर्वतों में हिमालयरूप, सहिष्णुओं में वसुन्धरा रूप है, उस सर्वमय को प्रणाम कर रहा हूँ ॥४३॥ जो पत्रों में तुलसीपत्र, दारुरूप (लकड़ियों) में चन्दन और वृक्षों में कल्पवृक्ष है, उस जगत्पति को नमस्कार कर रहा हूँ ॥४४॥ जो पुष्पों में पारिजात, सस्यों में धान्य और भक्ष्य वस्तुओं में अमृतरूप है, उस नाना रूप वाले को नमस्कार करता हूं ॥४५॥ जो गजेन्द्रों में ऐरावत, पक्षियों में वैनतेय (गरुड़), धेनुओं में कामधेनु है उस सब रूप को नमस्कार करता हूं ॥४६॥ जो तैजस पदार्थों में सुवर्ण, धान्यों में यव, पशुओं में केसरी (सिंह) रूप है, उस श्रेष्ठ रूप को नमस्कार करता हूँ ॥४७॥ जो यक्षों में कुबेर, ग्रहों में बृहस्पति, दिक्पालों में महेन्द्र रूप है, उस श्रेष्ठ रूप को नमस्कार करता हूँ ॥४८॥ जो शास्त्रों में वेदगण, पण्डितों में सरस्वती, अक्षरों में आकार रूप है, उस प्रधान देव को नमस्कार करता हूँ ॥४९॥ जो मन्त्रों में विष्णु मन्त्र, तीर्थों में स्वयं गंगा और इन्द्रियों में मनरूप है, उस सर्वश्रेष्ठ को नमस्कार करता हूं ॥५०॥ जो शस्त्रों में सुदर्शन, व्याधियों में वैष्णव ज्वर, तेजों में ब्रह्मतेज रूप है, उस वरेण्य को नमस्कार करता हूं ॥५१॥ जो बलवानों में बल, शीघ्रगामियों में मन, गिनने में कालरूप है, उस विलक्षण को नमस्कार करता हूँ ॥५२॥ जो गुरुओं में ज्ञानदाता, बन्धुओं में माता, मित्रों में जन्मदाता है, उस साररूप को नमस्कार करता हूँ ॥५३॥ जो शिल्पियों में विश्वकर्मा, रूपवानों में कामदेव, पत्नियों में पतिव्रता रूप है, उस नमस्कार योग्य को नमस्कार है ॥५४॥ जो प्रियों में पुत्र रूप, मनुष्यों में राजा रूप, यन्त्रों में शालग्राम रूप है, उस विशिष्ट को नमस्कार करता हूँ ॥५५॥ जो कल्याणबीजों का धर्मरूप, वेदों में सामवेद, और धर्मों में सत्यरूप है, उस विशिष्ट को नमस्कार करता हूँ ॥५६॥ जो जल में शीतलता रूप, पृथिवी में गन्धरूप, आकाश में शब्दरूप है, उस प्रणामयोग्य को नमस्कार करता हूँ ॥५७॥

क्रतूनां राजसूयो यो गायत्री छन्दसां च यः । गन्धर्वाणां चित्ररथस्तं गरिष्ठं नमाम्यहम् ॥५८॥
क्षीरस्वरूपो गव्यानां पवित्राणां च पावकः । पुण्यदानां च यः [1]स्तोत्रं तं नमामि शुभप्रदम् ॥५९॥
तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च वैरिणाम् । गुणानां शान्तरूपो यश्चित्ररूपं नमाम्यहम् ॥६०॥
तेजोरूपो ज्ञानरूपः सर्वरूपश्च यो महान् । सर्वानिर्वचनीयं च तं नमामि स्वयं विभुम् ॥६१॥
सर्वाधारेषु यो वायुर्यथाऽऽत्मा नित्यरूपिणाम् । आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम् ॥६२॥
वेदानिर्वचनीयं यं न स्तोतुं पण्डितः क्षमः । यदनिर्वचनीयं च को वा तत्स्तोतुमीश्वरः ॥६३॥
वेदा न शक्ता यं स्तोतुं जडीभूता सरस्वती । तं च वाङ्मनसोः पारं को विद्वान्स्तोतुमीश्वरः ॥६४॥
शुद्धतेजः स्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीव कमनीयं च श्यामरूपं नमाम्यहम् ॥६५॥
द्विभुजं [2]मुरलीवक्त्रं किशोरं सस्मितं मुदा । शश्वद्गोपाङ्गनाभिश्च वक्ष्यमाणं नमाम्यहम् ॥६६॥
राधया दत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थं च तमीशं प्रणमाम्यहम् ॥६७॥
रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः । पार्षदप्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम् ॥६८॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लाससमुत्सुकम् । रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम् ॥६९॥
शतशृङ्गे महाशैले गोलोके रत्नपर्वते । विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहारिणम् ॥७०॥

यज्ञों में राजसूय, छन्दों में गायत्री तथा गन्धर्वों में चित्ररथ है, उस गरिष्ठ को नमस्कार करता हूँ ॥५८॥ जो गव्य पदार्थों में दुग्धरूप, पवित्रों में अग्नि और पुण्यदाताओं में स्तोत्र रूप है उस शुभप्रद को नमस्कार करता हूँ ॥५९॥ जो तृणों में कुशरूप, वैरियों में व्याधिरूप और गुणों में शान्त रूप है उस चित्ररूप को नमस्कार करता हूँ ॥६०॥ जो तेजोरूप, ज्ञानरूप, सर्वरूप, महान् और सबसे अनिर्वचनीय रूप है, उस स्वयं विभु को नमस्कार करता हूँ ॥६१॥ जो समस्त आधारों में वायु, नित्य रूपियों में आत्मारूप और व्यापकों में आकाश रूप है, उस व्यापक को नमस्कार करता हूँ ॥६२॥ जिस, वेद के अनिर्वचनीय की स्तुति करने में पण्डित भी समर्थ नहीं है और जो अनिर्वचनीय है, उसकी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ॥६३॥ वेद जिसकी स्तुति नहीं कर सकते हैं और सरस्वती भी (जिसकी स्तुति करने में) जड़ीभूत रहती हैं, उस वाणी-मन से परे की स्तुति करने में कौन विद्वान् समर्थ हो सकता है ॥६४॥ शुद्ध तेजःस्वरूप, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले, अत्यन्त सुन्दर एवं श्याम रूप को नमस्कार करता हूँ ॥६५॥ दो भुजाएँ, मुख में मुरली, किशोररूप, मन्दहास, और निरन्तर गोपियों का वृन्द जिसे नयनकोर से देखा करता है, उसे नमस्कार करता हूँ ॥६६॥ राधा के दिये हुए मनोहर ताम्बूल को खाने वाले और रत्नसिंहासन पर सुशोभित उस ईश को प्रणाम करता हूँ ॥६७॥ रत्नों के भूषणों से भूषित, श्रेष्ठ पार्षदों और गोपकुमारों द्वारा श्वेतचामरों से सुसेवित उस देव को नमस्कार करता हूँ ॥६८॥ वृन्दावन के मध्य रम्य स्थान में (सदैव) रासोल्लास के हेतु समुत्सुक रहने वाले रासमण्डल के मध्यवर्ती रसिकेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥६९॥ गोलोक के सौ शिखर वाले महाशैल रत्नपर्वत पर और विरजा (नदी) के रम्य तट पर विहार करने वाले को प्रणाम करता हूँ ॥७०॥

१क. स्तोयस्तं । २ क. °हस्तं ।

परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। सत्यं ब्रह्मस्वरूपं च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम्॥७१॥
श्रीकृष्णस्य स्तोत्रमिदं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। धर्मार्थकाममोक्षाणां स दाता भारते भवेत्॥७२॥
हरिदास्यं हरौ भक्तिं लभेत्स्तोत्रप्रसादतः। इह लोके जगत्पूज्यो विष्णुतुल्यो भवेद्ध्रुवम्॥७३॥
सर्वसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते याति हरेः पदम्। तेजसा यशसा भाति यथा सूर्यो महीतले॥७४॥
जीवन्मुक्तः कृष्णभक्तः स भवेन्नात्र संशयः। अरोगी गुणवान्विद्वान्पुत्रवान्धनवान्सदा॥७५॥
षडभिज्ञो दशबलो मनोयायी भवेद्ध्रुवम्। सर्वज्ञः सर्वदश्चैव स दाता सर्वसंपदाम्॥७६॥
कल्पवृक्षसमः शश्वद्भवेत्कृष्णप्रसादतः। इत्येवं कथितं स्तोत्रं वत्स त्वं गच्छ पुष्करम्॥७७॥
तत्र कृत्वा मन्त्रसिद्धिं पश्चात्प्राप्स्यसि वाञ्छितम्। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कुरु पृथ्वीं यथासुखम्।
ममाऽऽशिषा मुनिश्रेष्ठ श्रीकृष्णस्य प्रसादतः ॥७८॥

इति श्री ब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० स्तवप्रदानं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

शिवं प्रणम्य स भृगुर्दुर्गां कालीं मुदाऽन्वितः। गत्वा पुष्करतीर्थं च मन्त्रसिद्धिं चकार ह॥

परिपूर्णतम, शान्त, राधाकान्त, मनोहर, सत्य, ब्रह्मस्वरूप कृष्ण को नित्य नमस्कार करता हूँ॥७१॥ भगवान् श्रीकृष्ण के इस स्तोत्र को तीनों समय जो पाठ करता है, वह भारत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का दाता होता है॥७२॥ इस स्तोत्र के प्रसाद से उसे भगवान् की भक्ति समेत हरिदास्य प्राप्त होता है और इस लोक में वह विष्णु के समान निश्चित रूप से जगत्पूज्य होता है॥७३॥ वह समस्त सिद्धों का अधीश्वर, शान्त और अन्त में भगवान् के लोक को जाता है। तेज और यश से वह सूर्य के समान पृथ्वी पर सुशोभित होता है॥७४॥ वह कृष्णभक्त जीवन्मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं। नीरोग, गुणवान्, विद्वान्, पुत्रवान्, सदा धनवान्, षडभिज्ञ, दशबल और मन की भाँति शीघ्रगामी होता है। सर्वज्ञाता, सर्वदानी, समस्त सम्पत्ति का दाता और भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से वह निरन्तर कल्पवृक्ष के समान होता है। हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें स्तोत्र सुना दिया, अब तुम पुष्कर चले जाओ॥७५-७७॥ वहाँ मन्त्रसिद्धि करने के पश्चात् अपना अभीष्ट प्राप्त करोगे। हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे आशीर्वाद और भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से सुख पूर्वक तुम पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय करो॥७८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में स्तव-प्रदान नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३२॥

अध्याय ३३

नारायण बोले—भृगु ने सप्रेम शिव, दुर्गा और काली को प्रणाम करके पुष्कर तीर्थ में जाकर मन्त्र सिद्ध करना आरम्भ किया॥१॥ वे भक्तिपूर्वक एक मास तक निराहार रहे—केवल भगवान् श्रीकृष्ण

स बभूव निराहारो मासं भक्तिसमन्वितः। ध्यायन्कृष्णपदाम्भोजं वायुरोधं चकार सः ॥२॥
ददर्श चक्षुरुन्मील्य गगनं तेजसाऽऽवृतम्। दिशो दश द्योतयन्तं समाच्छन्नदिवाकरम् ॥३॥
तेजोमण्डलमध्यस्थं रत्नयानं ददर्श ह। ददर्श तत्र पुरुषमत्यन्तं सुन्दरं वरम् ॥४॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। प्रणम्य दण्डवन्मूर्ध्ना वरं वव्रे तमीश्वरम् ॥५॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति। पादारविन्दे सुदृढां तां भक्तिमनपायिनीम् ॥६॥
दास्यं सुदुर्लभं शश्वत्त्वत्पादाब्जे च देहि मे। कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥७॥
भृगुः प्रणम्य भवनं तज्जगाम परात्परम्। पस्पन्द दक्षिणाङ्गं च परं मङ्गलसूचकम् ॥८॥
वाञ्छाप्रतीतिजननं सुस्वप्नं च ददर्श ह। मनः प्रसन्नं स्फीतं च तद्बभूव दिवानिशम् ॥
संभाष्य स्वजनं सर्वं गृहे तस्थौ मुदाऽन्वितः ॥९॥
स्वशिष्यान्पितृशिष्यांश्च भ्रातृवर्गांश्च बान्धवान्। आनीयाऽऽनीय विविधान्मन्त्रांश्च स चकार ह ॥१०॥
पौर्वापर्यं स्ववृत्तान्तं तानेवोक्त्वा शुभक्षणे। तैरेव सार्धं बलवान्बभूव गमनोन्मुखः ॥११॥
ददर्श मङ्गलं रामः शुश्राव जयसूचकम्। बुबुधे मनसा सर्वं स्वजयं वैरिसंक्षयम् ॥१२॥
यात्राकाले च पुरतः शुश्राव सहसा मुनिः। हरिशब्दं शङ्खरवं घण्टादुन्दुभिवादनम् ॥१३॥

के चरण-कमल का ध्यान करते हुए उन्होंने अपनी श्वास-गति रोक ली ॥२॥ अनन्तर आँखें खुलने पर उन्हें आकाश तेज से आच्छन्न दिखायी पड़ा। वहाँ दशो दिशाओं को प्रदीप्त करते हुए तथा सूर्य को आच्छादित किये तेजोमण्डल के मध्य में एक रत्न का यान (विमान) दिखायी पड़ा और उसमें अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ एक पुरुष दिखायी पड़ा, जो मन्दहास समेत प्रसन्न मुख एवं भक्तों पर अनुग्रह करनेवाला था। उस ईश्वर को शिर से दण्डवत्प्रणाम करके उससे वर की याचना की कि—'मैं इक्कीस बार इस पृथिवी को निःक्षत्रिय करूँ, आपके चरण कमल में अति दृढ़ एवं अविनाशिनी भक्ति प्राप्त हो तथा अपने चरणकमल का निरन्तर अतिदुर्लभ दास्य भाव मुझे प्रदान करने की कृपा करें।' भगवान् कृष्ण ने उन्हें वर प्रदान किया और उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ॥३-७॥ भृगु भी उस परात्पर भगवान् को प्रणाम कर अपने घर चले आये। परम मंगल सूचक उनका दक्षिणांग फड़कने लगा। मनोरथ सिद्ध होने का सुस्वप्न भी देखा। और तभी से दिन रात मन से प्रसन्न एवं स्फूर्तियुक्त रहने लगा। अपने परिवार के लोगों से समस्त वृत्तान्त बताकर घर में आनन्द चित्त से रहने लगे ॥८-९॥ अनन्तर अपने शिष्यों, पिता के शिष्यों, भ्राताओं और बन्धुवर्गों को बुला-बुलाकर विविध भाँति के मंत्रों की शिक्षा देने लगे ॥१०॥ शुभ क्षण में उन सबसे अपना समस्त वृत्तान्त कहते हुए उन सबों के साथ (युद्धार्थ) चलने की तैयारी की ॥११॥ उस समय राम ने विजयसूचक शब्द सुना और मंगल दर्शन किया। जिससे उन्होंने मन में निश्चय किया कि—मेरा विजय होगा और शत्रुओं का नाश होगा ॥१२॥ यात्रासमय मुनि ने अपने सामने सहसा घोड़े का शब्द, शंख-शब्द तथा घण्टा और नगाड़े की ध्वनि सुनी एवं आकाशवाणी का संगीत भी सुना कि—'तुम्हारा विजय होगा।'

आकाशवाणीसंगीतं जयस्ते भवितेति च। नवेङ्गितं च कल्याणं मेघशब्दं जयावहम् ॥१४॥
चकार यात्रां भगवाञ्छ्रुत्वैवं विविधं शुभम्। ददर्श पुरतो विप्रवह्निदैवज्ञभिक्षुकान् ॥१५॥
ज्वलत्प्रदीपं दधतीं पतिपुत्रवतीं सतीम्। पुरो ददर्श स्मेरास्यां नानाभूषणभूषिताम् ॥१६॥
शिवं शिवां पूर्णकुम्भं चाषं च नकुलं तथा। गच्छन्ददर्श रामश्च यात्रामङ्गलसूचकम् ॥१७॥
कृष्णसारं गजं सिंहं तुरङ्गं गण्डकं द्विपम्। चमरीं राजहंसं च चक्रवाकं शुकं पिकम् ॥१८॥
मयूरं खञ्जनं चैव शङ्खचिल्लं चकोरकम्। पारावतं बलाकं च कारण्डं चातकं चटम् ॥१९॥
सौदामनीं शक्रचापं सूर्यं सूर्यप्रभां शुभाम्। सद्योमांसं सजीवं च मत्स्यं शङ्खं सुवर्णकम् ॥२०॥
माणिक्यं रजतं मुक्तां मणीन्द्रं च प्रवालकम्। दधि लाजाञ्छुक्लधान्यं शुक्लपुष्पं च कुङ्कुमम् ॥२१॥
पर्णं पताकां छत्रं च दर्पणं श्वेतचामरम्। धेनुं वत्सप्रयुक्तां च रथस्थं भूमिपं तथा ॥२२॥
[1]दुग्धमाज्यं तथा पूगममृतं पायसं तथा। शालग्रामं [2]पक्वफलं स्वस्तिकं शर्करां[3] मधु ॥२३॥
मार्जारं च वृषेन्द्रं च मेषं पर्वतमूषिकम्। मेघाच्छन्नस्य च रवेरुदयं चन्द्रमण्डलम् ॥२४॥
कस्तूरीं व्यजनं[4] तोयं हरिद्रां तीर्थमृत्तिकाम्। सिद्धार्थं[5] सर्षपं दूर्वां विप्रबालं च बालिकाम् ॥२५॥
मृगं वेश्यां षट्पदं च कर्पूरं पीतवाससम्। गोमूत्रं गोपुरीषं च गोधूलिं गोपदाङ्कितम् ॥२६॥
गोष्ठं गवां वर्त्म रम्यां गोशालां गोगतिं शुभाम्। भूषणं देवमूर्तिं च ज्वलदग्निं महोत्सवम् ॥२७॥

कल्याणात्मक नूतन चेष्टायें और विजयसूचक घन-गर्जन हुआ ॥१३-१४॥ भगवान् परशुराम ने इस प्रकार के विविध शुभ नादों को सुनते हुए (युद्ध) यात्रा आरम्भ की। उसी समय सामने ब्राह्मण, वह्नि, दैवज्ञ (ज्योतिषी), संन्यासी तथा प्रज्वलित दीपक हाथ में लिए पतिपुत्रवती पतिव्रता स्त्री का दर्शन किया, जो मन्दहास करती हुई प्रसन्न मुख एवं अनेक भाँति के भूषणों से भूषित थी ॥१५-१६॥ यात्रा करते हुए राम ने स्यार, शिवा (सियारिन), पूर्ण कलश, नीलकंठ और नकुल (नेवला) इन मंगल सूचकों को देखा ॥१७॥ पुनः कृष्ण मृग, गज, सिंह, घोड़े, गण्डक, चमरी गौ, राजहंस, चक्रवाक, तोता, कोयल, मोर, खञ्जन पक्षी, शंखचिल्ल चकोर, कबूतर, बगुला, हारिल, पपीहा, गौरैया, विद्युत्, इन्द्रधनुष सूर्य और सूर्य की शुभ कांति, नवीन मांस, सजीव मत्स्य, शंख, सुवर्ण, माणिक्य, रजत (चांदी), मोती, मणीन्द्र, प्रवाल (मूँगा), दही, धान का लावा, शुक्ल धान्य, श्वेत पुष्प, कुंकुम, पलाश, पताका, छत्र, दर्पण, श्वेत चामर, सवत्सा गौ, रथ पर स्थित राजा, दुग्ध, घृत, सुपाड़ी, अमृत, खीर, शालग्राम, पके फल, स्वस्तिक, शक्कर, मधु, बिल्ली, सांड़, भेंड़ा, पर्वतीय चूहा, मेघाच्छन्न सूर्य का उदय, चन्द्रमण्डल, कस्तूरी, पंखा, जल, हरदी, तीर्थ की मिट्टी, राई, सरसों, दूर्वा, ब्राह्मण बालक और बालिका, मृग, वेश्या, भौंरा, कपूर, पीताम्बर, गोमूत्र, गोबर, गौ का चरणचिह्न, गोधूलि, गौओं के रहने का स्थान, उनके मार्ग, गोशाला, गौओं की शुभ गति, भूषण, देवमूर्ति, प्रज्वलित अग्नि, महोत्सव, ताँबा, स्फटिक,

---

१क. ०घं च रोचनामाल्यम०। २क. ०कङ्कफ०। ३क. ०र्करान्विता। ४क. कज्जलं०। ५क. ०द्धान्नं।

ताम्रं च स्फटिकं 'वन्द्यं सिन्दूरं माल्यचन्दनम्। गन्धं च हीरकं रत्नं ददर्श दक्षिणे शुभम्॥२८॥
सुगन्धिवायोराघ्राणं प्राप विप्राशिषं शुभाम् ॥२९॥
इत्येवं मङ्गलं ज्ञात्वा प्रययौ स मुदाऽन्वितः। अस्तं गते दिनकरे नर्मदातीरसंनिधौ॥३०॥
तत्राक्षयवटं दिव्यं ददर्श सुमनोहरम्। अत्यूर्ध्वं विस्तृतमतिपुण्याश्रमपदं परम् ॥३१॥
पौलस्त्यतपसः स्थानं सुगन्धिमरुदन्वितम्। कार्तवीर्यार्जुनाभ्याशे तत्र तस्थौ गणैः सह॥३२॥
सुष्वाप पुष्पशय्यायां किंकरैः परिसेवितः। निद्रां ययौ परिश्रान्तः परमानन्दसंयुतः॥३३॥
निशातीते च स भृगुश्चारु स्वप्नं ददर्श ह। न चिन्तितं यन्मनसा वायुपित्तकफं विना॥३४॥
गजाश्वशैलप्रासादगोवृक्षफलितेषु च । आरुह्यमाणमात्मानं रुदन्तं कृमिभक्षितम्॥३५॥
आरुह्यमाणमात्मानं नौकायां चन्दनोक्षितम्। धृतवन्तं पुष्पमालां शोभितं पीतवाससा॥३६॥
विण्मूत्रोक्षितसर्वाङ्गं वसापूयसमन्वितम् । वीणां वरां वादयन्तमात्मानं च ददर्श ह॥३७॥
विस्तीर्णपद्मपत्रैश्च स्वं ददर्श सरित्तटे। दध्याज्यमधुसंयुक्तं भुक्तवन्तं च पायसम्॥३८॥
भुक्तवन्तं च ताम्बूलं लभन्तं ब्राह्मणाशिषम् । फलपुष्पप्रदीपं च पश्यन्तं स्वं ददर्श ह॥३९॥
परिपक्वफलं क्षीरमुष्णान्नं शर्करान्वितम् । स्वस्तिकं भुक्तवन्तं स्वं ददर्श च पुनः पुनः॥४०॥

वन्दनीय सिन्दूर, माला, चन्दन, गन्ध, हीरा और रत्न दाहिनी ओर देखा॥१८-२८॥ सुगन्धित वायु का सूंघना तथा ब्राह्मणों का शुभाशीर्वाद उन्हें प्राप्त हुआ ॥२९॥ इस प्रकार मंगल समय जानकर परशुराम ने प्रसन्नता पूर्वक यात्रा की। सूर्य के अस्त होते-होते नर्मदा तट पर पहुँचकर वहाँ उस दिव्य एवं अति मनोहर अक्षयवट वृक्ष को देखा, जो अति ऊँचा, विस्तृत (चौड़ा) एवं आश्रम के समीप था॥३०-३१॥ वह पौलस्त्य का तपः-स्थान था, जहाँ सदैव सुगन्धित वायु चलता रहता था। ऐसे कार्तवीर्यार्जुन के समीप वाले स्थान में अपने गणों समेत उन्होंने निवास किया। पुष्प-शय्या पर शयन किया और किंकर लोग उनकी सेवा कर रहे थे। अधिक श्रान्त होने के कारण वे परम आनन्द से निद्रामग्न हो गये॥३२-३३॥ रात्रि के अन्तिम प्रहर में उन्होंने बिना कफ, वायु, पित्त के प्रकोप के, सुन्दर स्वप्न देखा, जिसे कभी सोचा भी नहीं था ॥३४॥ स्वप्न में गज, घोड़े, पर्वत, प्रासाद, गौ और फल समेत वृक्ष पर चढ़ते हुए, रोदन करते हुए एवं कीड़ों द्वारा खाये जाते हुए अपने को देखा। नौका पर बैठे अपने को देखा तथा चन्दन-चर्चित सर्वांग, पुष्पमाला धारण किये, पीताम्बर भूषित, विष्ठा, मूत्र समेत चर्बी और पीव सर्वांग में लगाये तथा सुन्दर वीणा बजाते हुए देखा॥३५-३७॥ नदी के तट पर विस्तृत कमल पत्तों पर दही, घी और मधु समेत खीर खाते हुए अपने को देखा॥३८॥ ताम्बूल खाते एवं ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करते तथा फल, पुष्प, प्रदीप देखते अपने को देखा॥३९॥ परिपक्व फल, क्षीर शक्कर समेत उष्ण (गरम) अन्न और स्वस्तिक (बरा) खाते अपने को बार-बार देखा॥४०॥ जोंक, बिच्छू, मछली, और सर्प से डंसे

१क. रैत्यं सि०।

जलौकसा वृश्चिकेन मीनेन भुजगेन च। भक्षितं भीतमात्मानं पलायन्तं ददर्श सः ॥४१॥
ततो ददर्श चाऽऽत्मानं मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । पतिपुत्रवतीं नारीं पश्यन्तं सस्मितं द्विजम् ॥४२॥
सुवेषया कन्यकया सस्मितेन द्विजेन च। ददर्श श्लिष्टमात्मानं तुष्टेन परितुष्टया ॥४३॥
फलितं पुष्पितं वृक्षं देवताप्रतिमां नृपम्। गजस्थं च रथस्थं च पश्यन्तं स्वं ददर्श सः ॥४४॥
पीतवस्त्रपरिधानां रत्नालंकारभूषिताम् । विशन्तीं ब्राह्मणीं गेहं पश्यन्तं स्वं ददर्श सः ॥४५॥
शंख च स्फटिकं श्वेतमालां मुक्तां च चन्दनम् । सुवर्णं रजतं रत्नं पश्यन्तं स्वं ददर्श सः ॥६॥
गजं वृषं च सर्पं च श्वेतं च श्वेतचामरम् । नीलोत्पलं दर्पणं च भार्गवो वै ददर्श सः ॥४७॥
रथस्थं नवरत्नाढ्यं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नसिंहासनस्थं स्वं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥४८॥
पद्मश्रेणीं पूर्णकुम्भं दधिलाजान्घृतं मधु। पर्णञ्छत्रं छत्रिणं च भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥४९॥
बकपङ्क्तिं हंसपङ्क्तिं कन्यापङ्क्तिं व्रतान्विताम्। पूजयन्तीं घटं शुभ्रं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५०॥
मण्डपस्थं द्विजगणं पूजयन्तं हरं हरिम्। जयोऽस्त्वित्युक्तवन्तं तं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५१॥
सुधावृष्टिं पर्णवृष्टिं फलवृष्टिं च शाश्वतीम्। पुष्पचन्दनवृष्टिं च भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५२॥
सद्योमांसं जीवमत्स्यं मयूरं श्वेतखञ्जनम्। सरोवरं च तीर्थानि भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५३॥
पारावतं शुकं चाषं शङ्खं चिल्लं च चातकम्। व्याघ्रं सिंहं च सुरभीं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५४॥
गोरोचनां हरिद्रां च शुक्लधान्याचलं वरम्। ज्वलदग्निं तथा दूर्वां भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५५॥

जाते एवं भीत होकर भागते हुए अपने को देखा ॥४१॥ पुनः उस ब्राह्मण ने अपने समेत चन्द्र सूर्य का मण्डल और मन्दहास करती हुई पति-पुत्रवती स्त्री को देखते एवं मुसकराते हुए द्विज को देखा। सजी-धजी एवं सन्तुष्ट कन्या और सन्तुष्ट एवं मुसकराते हुए ब्राह्मण द्वारा अपने को आलिंगित देखा ॥४२-४३॥ फूल-फल समेत वृक्ष, देवता की मूर्ति, राजा और गज एवं रथ पर बठे अपने को देखा ॥४४॥ पीताम्बर पहने, रत्नों के भूषणों से भूषित होकर घर में प्रवेश करती हुई ब्राह्मणी को देखते अपने को देखा ॥४५॥ शंख, स्फटिक, श्वेतमाला, मुक्ता, चन्दन, सुवर्ण, चाँदी और रत्न देखते अपने को देखा ॥४६॥ गज, वृष (बैल), सर्प, श्वेत, श्वेतचामर, नीलकमल, और दर्पण भार्गव ने देखे ॥४७॥ राम ने स्वप्न में रथपर बैठे, नूतन रत्नों से भूषित, मालती माला से सुशोभित और रत्न सिंहासन पर स्थित अपने को देखा ॥४८॥ कमल-पंक्तियाँ, पूर्णघट, दही, लावा, घृत, मधु, पत्ते का छत्र तथा अपने को छत्र लगाये देखा ॥४९॥ बगुला की पंक्ति, हंसों की पंक्ति तथा व्रत करनेवाली कन्याओं की पंक्ति को, जो शुभ्र कलश की पूजा कर रही थीं, राम ने स्वप्न में देखा ॥५०॥ मण्डप में बैठे एवं विष्णु और शिव को पूजते हुए ब्राह्मणों को, जो कह रहे थे कि—'तुम्हारा विजय हो,' स्वप्न में देखा ॥५१॥ सुधावृष्टि, पत्ते की वर्षा, निरन्तर फल की-वर्षा एवं पुष्प-चन्दन की वर्षा स्वप्न में उन्होंने देखी ॥५२॥ तुरन्त का मांस, जीवित मत्स्य, मोर, श्वेत खञ्जन पक्षी, सरोवर एवं तीर्थ राम ने स्वप्न में देखे ॥५३॥ कबूतर, तोते, नीलकण्ठ, श्वेत चील्ह पक्षी, पपीहा, बाघ, सिंह और गौ को स्वप्न में देखा ॥५४॥ गोरोचना, हरिद्रा, चावल का पर्वत, प्रज्वलित अग्नि एवं दूर्वा को स्वप्न

देवालयसमूहं च शिवलिङ्गं च पूजितम् । अर्चितां मृण्मयीं शैवां भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५६॥
यवगोधूमचूर्णानां [1]भक्ष्याणि विविधानि च । भृगुर्ददर्श स्वप्ने च बुभुजे च पुनः पुनः ॥५७॥
दिव्यवस्त्रपरिधानो रत्नभूषणभूषितः । अगम्यागमनं स्वप्ने चकार भृगुनन्दनः ॥५८॥
ददर्श नर्तकीं वेश्यां रुधिरं च सुरां पपौ । रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः स्वप्ने च भृगुनन्दनः ॥५९॥
पक्षिणां पीतवर्णानां मानुषाणां च नारद । मांसानि बुभुजे रामो हृष्टः स्वप्नेऽरुणोदये ॥६०॥
अकस्मान्निगडैर्बद्धं क्षतं शस्त्रेण स्वं पुनः । दृष्ट्वा च बुबुधे प्रातः समुत्तस्थौ हरिं स्मरन् ॥६१॥
अतीव हृष्टः स्वप्नेन प्रातःकृत्यं चकार सः । मनसा बुबुधे सर्वं विजेष्यामि रिपुं ध्रुवम् ॥६२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

स प्रातराह्निकं कृत्वा समालोच्य च तैः सह । दूतं प्रस्थापयामास कार्तवीर्याश्रमं भृगुः ॥१॥
स दूतः शीघ्रमागत्य वसन्तं राजसंसदि । वेष्टितं सचिवैः सार्धमुवाच नृपतीश्वरम् ॥२॥

में भृगु ने देखा ॥५५॥ देव-मन्दिरों के समूह, पूजित शिवलिंग, दुर्गा की मिट्टी की पूजित मूर्ति को स्वप्न में देखा ॥५६॥ जवा, गेहूँ के आंटे के बने अनेक भांति के भक्ष्य पदार्थ और उन्हें बार-बार खाते अपने को स्वप्न में भृगु ने देखा ॥५७॥ भृगुनन्दन राम ने स्वप्न में दिव्य वस्त्र पहने एवं रत्नों के भूषणों से भूषित हो अगम्या स्त्री के साथ संभोग किया स्वप्न में नृत्य करती वेश्या को देखा तथा रुधिर और मद्य का पान किया और रुधिर से भीगा अपना सर्वांग देखा ॥५८-५९॥ हे नारद ! राम ने स्वप्न में अरुणोदय समय पीले रंग के पक्षी और मनुष्यों का मांस सुप्रसन्न होकर खाया ॥६०॥ पुनः अकस्मात् बेड़ी से आबद्ध होकर शस्त्र से अपने को क्षत देखा। ऐसा स्वप्न देखते हुए प्रातःकाल भगवान् का स्मरण करते हुए वे उठ बैठे ॥६१॥ स्वप्न से अति हर्षित होकर उन्होंने प्रातःकाल का नित्य-कर्म समाप्त किया और मन में निश्चित बोध किया कि—मैं शत्रु को निश्चित जीतूंगा ॥६२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

अध्याय ३४

नारायण बोले—प्रातःकालीन कर्म समाप्त करके राम ने अपने लोगों के साथ मंत्रणा (सलाह) की और कार्तवीर्य्य के यहाँ दूत भेज दिया ॥१॥ उस दूत ने शीघ्र राजसभा में आकर राजा से, जो अपने मंत्रियों के साथ घिरा बैठा था, कहा ॥२॥

१क. पिष्टानि लड्डुकानि च ।

रामदूत उवाच

नर्मदातीरसांनिध्ये न्यग्रोधाक्षयमूलके । स भृगुभ्रातृभिः सार्धं त्वं तत्राऽऽगन्तुमर्हसि ॥३॥
युद्धं कुरु महाराज जातिभिर्ज्ञातिभिः सह। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यति महीमिति ॥४॥
इत्युक्त्वा रामदूतश्चाप्यगच्छद्रामसंनिधिम् । राजा विधाय संनाहं समरं गन्तुमुद्यतः ॥५॥
गच्छन्तं समरं दृष्ट्वा प्राणेशं सा मनोरमा । तमेव वारयामास वासयामास संनिधौ ॥६॥
राजा मनोरमां दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणः । तामुवाच सभामध्ये वाक्यं मानसिकं मुने ॥७॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

मामेवाह्वयते कान्ते जमदग्निसुतो महान्। स तिष्ठन्नर्मदातीरे रणाय भ्रातृभिः सह ॥८॥
संप्राप्य शंकराच्छस्त्रं मन्त्रं च कवचं हरेः। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छति मेदिनीम् ॥९॥
आन्दोलयन्ति मे प्राणा मनः संक्षुभितं मुहुः। शश्वत्स्फुरति वामाङ्गं दृष्टं स्वप्नं शृणु प्रिये ॥१०॥
तैलाभ्यङ्गितमात्मानपपश्यं गर्दभोपरि। ओण्ढपुष्पस्य माल्यं च बिभ्रतं रक्तचन्दनम् ॥११॥
रक्तवस्त्रपरीधानं लोहालंकारभूषितम् । क्रीडन्तं च हसन्तं च निर्वाणाङ्गाररराशिना ॥१२॥

रामदूत बोला—हे महाराज ! नर्मदा तट पर स्थित उस अक्षय मूल वाले वट वृक्ष के नीचे भृगु अपने भ्राताओं समेत स्थित हैं, अतः अपने जाति-बन्धुओं समेत वहाँ चल कर उनसे युद्ध करो—'वे इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करेंगे ॥३-४॥ इतना कह कर राम का दूत राम के पास चला आया। उधर राजा भी कवच आदि धारण कर समर जाने को तैयार हुआ ॥५॥ युद्ध के लिए जाते हुए प्राणेश को देख कर उसकी पत्नी मनोरमा ने उसे मना किया और पास बुला कर अपने वक्ष से लगा लिया ॥६॥ हे मुने ! मनोरमा को देख कर राजा का मुख और नेत्र प्रसन्नता से खिल उठा। उसने अपना मानसिक विचार सभामध्य में ही उससे कहना आरम्भ किया ॥७॥

कार्तवीर्यार्जुन बोले—हे कान्ते ! जमदग्नि का महान् पुत्र राम मुझे बुला रहा है, जो अपने भ्राताओं समेत युद्ध के लिए नर्मदा के तट पर स्थित है ॥८॥ शंकर से शस्त्र, मंत्र और कवच प्राप्त कर वह इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करना चाहता है ॥९॥ इससे मेरे प्राण भयाकुल हो रहे हैं, मन बार-बार संक्षुब्ध हो रहा है, बायाँ अंग निरन्तर फड़क रहा है और हे प्रिये ! मैंने जो स्वप्न देखा है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥१०॥ सर्वाङ्ग में तेल लगाये, गधे पर बैठे अपने को देखा है और अड़हुल पुष्प की माला धारण किये, रक्त चन्दन लगाये, रक्त वस्त्र पहने, लोहे के आभूषण से भूषित, बुझे कोयलों की ढेरी पर खेलते और हँसते अपने को मैंने देखा है ॥११-१२॥

१क. ०वाऽऽज्ञायते वीर्याज्ज० ।

भस्माच्छन्नां च पृथिवीं जपापुष्पान्वितां सति। रहितं चन्द्रसूर्याभ्यां रक्तसंध्यान्वितं नभः॥१३॥
मुक्तकेशां च नृत्यन्तीं विधवां छिन्ननासिकाम्। रक्तवस्त्रपरीधानामपश्यं चाट्टहासिनीम्॥१४॥
सशरामग्निरहितां चितां भस्मसमन्विताम्। भस्मवृष्टिमसृग्वृष्टिमग्निवृष्टिमपीश्वरि॥१५॥
पक्वतालफलाकीर्णां पृथिवीमस्थिसंयुताम्। अपश्यं कर्परौघं च छिन्नकेशनखान्वितम्॥१६॥
पर्वतं लवणानां च राशीभूतं कपर्दकम्। चूर्णानां चैव तैलानामदृशं कन्दरं निशि॥१७॥
अदृशं पुष्पितं वृक्षमशोककरवीरयोः। तालवृक्षं च फलितं तत्र चैव पतत्फलम्॥१८॥
स्वकरात्पूर्णकलशः पपात च बभञ्ज च। इत्यपश्यं च गगनात्संपतच्चन्द्रमण्डलम्॥१९॥
अपश्यमम्बरात्सूर्यमण्डलं संपतद्भुवि। उल्कापातं धूमकेतुं ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः॥२०॥
विकृताकारपुरुषं विकटास्यं दिगम्बरम्। आगच्छन्तं चाग्रतस्तमपश्यं च भयानकम्॥२१॥
बाला द्वादशवर्षीया वस्त्रभूषणभूषिता। संरुष्टा याति मद्गेहादित्यपश्यमहं निशि॥२२॥
आज्ञां त्वं देहि राजेन्द्र त्वद्गेहाद्यामि काननम्। वदसि त्वं मामिति च निश्यपश्यमहं मुदा॥२३॥
रुष्टो विप्रो मां शपते संन्यासी च तथा गुरुः। भित्तौ पुत्तलिकाश्चित्रा नृत्यन्तीश्च ददर्श ह॥२४॥
चञ्चलानां च गृध्राणां काकानां निकरैः सदा। पीडितं महिषाणां च स्वमपश्यमहं निशि॥२५॥
पीडितं तैलयन्त्रेण भ्रामितं तैलकारिणा। दिगम्बरान्पाशहस्तानपश्यमहमीश्वरि॥२६॥

पृथ्वी को भस्म (राख) से आच्छन्न और जपापुष्प (अड़हुल से) युक्त तथा आकाश को चन्द्र-सूर्य से रहित और रक्त वर्ण की संध्या से युक्त देखा॥१३॥ खुले केश, नृत्य करती, छिन्न नासिका (कटी नाक), रक्त वस्त्र पहने और अट्टहास करती हुई विधवा स्त्री को देखा है॥१४॥ हे ईश्वरि! बाणयुक्त, अग्नि रहित, तथा भस्म (राख) युक्त चिता को एवं भस्म की वर्षा, रक्त की वर्षा और अग्नि की वर्षा को देखा है॥१५॥ पके ताड़ फल से आच्छन्न एवं अस्थि (हड्डी) से युक्त पृथ्वी को कटे केश और नख से युक्त तथा कपाल (खोपड़ी) के समूह को देखा है॥१६॥ नमक के पर्वत, कौड़ी की राशि, चूर्ण और तेल की कन्दरा (गुफा) को रात (स्वप्न) में देखा है॥१७॥ अशोक और कनेर के फूले वृक्ष, फल लगे ताड़ वृक्ष और उसके गिरते हुए फल को देखा। अपने हाथ से पूर्ण कलश गिर पड़ा और फूट गया, यह देखा। आकाश से गिरते चन्द्रमण्डल को देखा है॥१८-१९॥ आकाश से सूर्य मण्डल को पृथ्वी पर गिरते देखा है। उल्कापात, धूमकेतु तारा और चन्द्र-सूर्य का ग्रहण देखा है॥२०॥ विकृत आकार वाला पुरुष, जो भीषण मुख, नग्न एवं भयानक था, सामने से आ रहा था, ऐसा देखा है॥२१॥ वस्त्र-भूषणों से भूषित, बारह वर्ष की स्त्री रुष्ट होकर मेरे घर से जा रही थी, ऐसा रात स्वप्न में मैंने देखा है॥२२॥ और वह कह रही थी कि—'हे राजेन्द्र! आज्ञा प्रदान करो, मैं तुम्हारे घर से वन जाना चाहती हूँ, मुझसे कहो। शोकग्रस्त होकर मैंने रात में यह देखा है॥२३॥ रुष्ट होकर ब्राह्मण, संन्यासी और गुरु मुझे शाप दे रहे थे। और दीवाल पर चित्रित पुतलियाँ नाच रही थीं, ऐसा देखा है॥२४॥ चंचल गीधों, कौओं और भैंसों के समूहों से पीड़ित अपने को मैंने रात में देखा है॥२५॥ हे ईश्वरि! तेली द्वारा कोल्हू में घुमाये जाते हुए अपने को और हाथों में फांस लिए दिगम्बरों (नग्नों) को मैंने देखा है॥२६॥ अपने घर में सभी गवैयों को नाचते-गाते देखा है। परमानन्द पूर्ण विवाह मैंने रात में देखा

नृत्यन्ति गायकाः सर्वे गानं गायन्ति मे गृहे। विवाहं परमानन्दमित्यपश्यमहं निशि ॥२७॥
रमणं कुर्वतो लोकान्केशाकेशि च कुर्वतः। अदृशं समरं रात्रौ काकानां च शुनामपि ॥२८॥
मोटकानि च पिण्डानि श्मशानं शवसंयुतम्। रक्तवस्त्रं शुक्लवस्त्रमपश्यं निशि कामिनि ॥२९॥
कृष्णाम्बरा कृष्णवर्णा नग्ना वै मुक्तकेशिनी। विधवा श्लिष्यति च मामपश्यं निशि शोभने ॥३०॥
नापितो मुण्डते मुण्डं श्मश्रुश्रेणीं च मे प्रिये। वक्षःस्थलं च नखरमित्यपश्यमहं निशि ॥३१॥
पादुकाचर्मरज्जूनामपश्यं राशिमुल्बणम्। चक्रं भ्रमन्तं भूमौ च कुलालस्येति सुन्दरि ॥३२॥
वात्यया घूर्णमानं च शुष्कवृक्षं तमुत्थितम्। पूर्णमानं कबन्धं वै चापश्यं निशि सुव्रते ॥३३॥
ग्रथितां मुण्डमालां च चू (घू) र्णमानां च वात्यया। अतीव घोरदशनामप्यपश्यमहं वरे ॥३४॥
भूतप्रेता मुक्तकेशा वमन्तश्च हुताशनम्। मां भीषयन्ति सततमित्यपश्यमहं निशि ॥३५॥
दग्धजीवं दग्धवृक्षं व्याधिग्रस्तं नरं परम्। अङ्गहीनं च वृषलमप्यपश्यमहं निशि ॥३६॥
गेहपर्वतवृक्षाणां सहसा पततं परम्। मुहुर्मुहुर्वज्रपातमप्यपश्यमहं निशि ॥३७॥
कुक्कुराणां शृगालानां रोदनं च मुहुर्मुहुः। गृहे गृहे च नियतमपश्यं सर्वतो निशि ॥३८॥
अधःशिरस्तूर्ध्वपादं मुक्तकेशं दिगम्बरम्। भूमौ भ्रमन्तं गच्छन्तं चाप्यपश्यमहं नरम् ॥३९॥
विकृताकारशब्दं च ग्रामादौ देवरोदनम्। प्रातः श्रुत्वैवाबबुद्धः क उपायो वदाधुना ॥४०॥
नृपतेर्वचनं श्रुत्वा हृदयेन विदूयता। सगद्गदं च रुदती तमुवाच नृपेश्वरम् ॥४१॥

है ॥२७॥ लोग परस्पर में केश पकड़ कर रमण करते थे, तथा रात में कौवे, कुत्ते का युद्ध देखा है ॥२८॥ हे कामिनि ! रात में मैंने मोटक, पिण्ड, शव समेत श्मशान, रक्त वस्त्र और श्वेत वस्त्र देखा है ॥२९॥ हे शोभने ! रात में काले वस्त्र वाली, काले वर्ण वाली, नग्न और केश खोले विधवा स्त्री मेरा आलिंगन कर रही थी, ऐसा मैंने देखा है ॥३०॥ हे प्रिये ! नापित (नाई) दाढ़ी मूछ समेत मेरा मुण्डन कर रहा था और वक्षः स्थल में नख-व्रण (घाव) रात में मैंने देखा है ॥३१॥ हे सुन्दरि ! पादुका, चमड़े की रस्सी की उत्कट राशि एवं भूमि पर घूमते हुए कुम्हार का चक्का मैंने देखा है ॥३२॥ हे सुव्रते ! रात में वायु द्वारा घूमते हुए सूखा वृक्ष उठ कर खड़ा हो गया है, कबन्ध (सिर से अलग धड़) घूम रहा है, ऐसा मैंने देखा है ॥३३॥ हे श्रेष्ठे ! गूँथी हुई मुण्डमाला को, जो प्रचण्ड वायु (बवन्डर) के झोंके से घूम रही थी और जिसके और दाँत विकराल थे, मैंने देखा है ॥३४॥ रात में यह भी देखा है कि—भूत-प्रेत खुले केश रह कर अग्नि का वमन करके मुझे निरन्तर भयभीत कर रहे हैं ॥३५॥ जले हुए जीव, जले हुए वृक्ष, परम रोगी मनुष्य और अंगहीन शूद्र को मैंने रात में देखा है ॥३६॥ घर, पर्वत और वृक्षों के सहसा पतन और बार-बार वज्रपात भी रात में मैंने देखा है ॥३७॥ प्रत्येक घर में कुत्ते और स्यार के बार-बार रोदन भी देखा है, जो चारों ओर नियत होकर कर रहे थे ॥३८॥ रात में मैंने यह भी देखा कि—कोई मनुष्य नीचे शिर, ऊपर चरण कर, खुले केश और नग्न होकर भूमि पर घूमते हुए चल रहा है ॥३९॥ गाँव आदि में विकृत आकार वालों का शब्द और देवों का रोदन सुनते ही मैं प्रातःकाल जगा हूँ, बताओ, इस समय इसका क्या उपाय है ॥४०॥ राजा की बातें सुन कर दुखी हृदय से रोती हुई मनोरमा ने गद्गद वाणी में राजा से कहा ॥४१॥

हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठ सर्वमहीभृताम्। प्राणातिरेक प्राणेश शृणु वाक्यं शुभावहम्॥४२॥
नारायणांशो भगवाञ्जामदग्न्यो महाबली। सृष्टिसंहर्तुरीशस्य शिष्योऽयं जगतः प्रभोः॥४३॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति। प्रतिज्ञा यस्य रामस्य तेन सार्धं रणं त्यज॥४४॥
पापिनं रावणं जित्वा शूरं त्वमपि मन्यसे। स त्वया न जितो नाथ स्वपापेन पराजितः॥४५॥
यो न रक्षति धर्मं च तस्य को रक्षिता भुवि। स नश्यति स्वयं मूढो जीवन्नपि मृतो हि सः॥४६॥
शुभाशुभस्य सततं साक्षी धर्मस्य कर्मणः। आत्मारामः स्थितः स्वान्तो मूढस्त्वं नहि पश्यसि॥४७॥
पुत्रदारादिकं यद्यत्सर्वैश्वर्यं सुधर्मिणाम्। जलबुद्बुदवत्सर्वमनित्यं नश्वरं नृप॥४८॥
संसारं स्वप्नसदृशं मत्वा सन्तोऽत्र भारते। ध्यायन्ति सततं धर्मं तपः कुर्वन्ति भक्तितः॥४९॥
दत्तेन दत्तं यज्ज्ञानं तत्सर्वं विस्मृतं त्वया। अस्ति चेद्विप्रहिंसायां कुबुद्धे त्वन्मनः कथम्॥५०॥
सुखार्थे मृगयां गत्वा तत्रोपोष्य द्विजाश्रमे। भुक्त्वा मिष्टमपूर्वं च हतो विप्रो निरर्थकम्॥५१॥
गुरुविप्रसुराणां च यः करोति पराभवम्। अभीष्टदेवस्तं रुष्टो विपत्तिस्तस्य संनिधौ॥५२॥
स्मरणं कुरु राजेन्द्र दत्तात्रेयपदाम्बुजम्। गुरौ भक्तिश्च सर्वेषां सर्वविघ्नविनाशिनी॥५३॥

मनोरमा बोली—हे रमणश्रेष्ठ ! नाथ ! आप सभी राजाओं में श्रेष्ठ हैं। हे प्राणों से अधिक ! प्राणेश ! मेरी शुभ बातें सुनो॥४२॥ भगवान् जामदग्न्य महाबली एवं नारायण के अंश हैं और सृष्टि का संहार करने वाले एवं जगत् के स्वामी शंकर के शिष्य हैं॥४३॥ इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करूँगा, ऐसी जिसकी प्रतिज्ञा है, उस राम के साथ युद्ध करने की बात छोड़ दो॥४४॥ पापी रावण को जीत कर तुम भी अपने को शूर मानते हो। हे नाथ ! उसको तुमने जीता नहीं, अपितु वह अपने पाप से पराजित हुआ॥४५॥ क्योंकि जो धर्म की रक्षा नहीं करता है भूतल पर उसकी रक्षा कौन कर सकता है ? वह मूढ़ स्वयं नष्ट हो जाता है और जीवित रहते हुए भी मृतक रहता है॥४६॥ जो शुभ-अशुभ, धर्म-कर्म का साक्षी, आत्माराम और अन्तःकरण में स्थित है, मूढ़ता के कारण तुम उसे नहीं देख रहे हो॥४७॥ हे राजन् ! सुधर्मी पुरुषों के लिए पुत्र, स्त्री आदि समस्त ऐश्वर्य जल के बुल्ले के समान अनित्य और नश्वर हैं॥४८॥ इसीलिए भारत में सन्त महात्मा लोग संसार को स्वप्नवत् मान कर निरन्तर धर्म का ध्यान करते और भक्तिपूर्वक तप करते हैं॥४९॥ दत्तात्रेय के दिए हुए समस्त ज्ञान को तुमने विस्मृत कर दिया, नहीं तो ब्राह्मण की हिंसारूपी कुबुद्धि में तुम्हारा मन कैसे लगता॥५०॥ सुख के लिए मृगया (शिकार) खेलने गए थे वहाँ उपवास करने पर ब्राह्मण के आश्रम में अपूर्व मधुर भोजन किया और निरर्थक उसी ब्राह्मण को मार डाला॥५१॥ गुरु, ब्राह्मण, देवता का जो अपमान करता है, अभीष्ट देव उस पर रुष्ट हो जाते हैं और विपत्ति उसके समीप आ जाती है॥५२॥ हे राजेन्द्र ! दत्तात्रेय के चरण-कमल का स्मरण करो, क्योंकि गुरु में भक्ति करने से समस्त विघ्नों का नाश होता है॥५३॥ उन्हीं गुरुदेव की अर्चना करके भृगु की

गुरुदेवं समभ्यर्च्य तं भृगुं शरणं व्रज। विप्रे देवे प्रसन्ने च क्षत्त्रियाणां नहि क्षतिः ॥५४॥
विप्रस्य किंकरो भूपो वैश्यो भूपस्य भूमिप। सर्वेषां किंकराः शूद्रा ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥५५॥
अयशः शरणं शश्वत्क्षत्त्रियस्य च क्षत्रिये। महद्यशस्तच्छरणं गुरुदेवद्विजेषु च ॥५६॥
ब्राह्मणं भज राजेन्द्र गरीयांसं सुरादपि। ब्राह्मणे परितुष्टे च संतुष्टाः सर्वदेवताः ॥५७॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रं क्रोडे कृत्वा महासती। मुहुर्मुहुर्मुखं दृष्ट्वा विललाप रुरोद च ॥५८॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरेवमुवाच सा। स्नानं कुरु महाराज भोजयिष्यामि वाञ्छितम् ॥५९॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरैः कुङ्कुमैर्युतम्। अनुलेपं करिष्यामि सर्वाङ्गे तव सुन्दर ॥६०॥
क्षणं सिंहासने तिष्ठ क्षणं वक्षसि मे प्रभो। सभायां [1]पुष्परचिते तल्पे पश्यामि शोभनम् ॥६१॥
शतपुत्राधिकः प्रेम्णा सतीनां वै पतिर्नृप। निरूपितो भगवता वेदेषु हरिणा स्वयम् ॥६२॥
मनोरमावचः श्रुत्वा राजा परमपण्डितः। बोधयामास तां राज्ञीं ददौ प्रत्युत्तरं पुनः ॥६३॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि श्रुतं सर्वं त्वयेरितम्। शोकार्तानां च वचनं न प्रशंस्यं सभासु च ॥६४॥
सुखं दुःखं भयं शोकः कलहः प्रीतिरेव च। कर्मभोगार्हकालेन सर्वं भवति सुन्दरि ॥६५॥

शरण में चले जाओ। ब्राह्मण और देवता के प्रसन्न होने पर क्षत्रियों की कोई हानि नहीं होती है ॥५४॥ हे भूमिपाल! राजा ब्राह्मण का सेवक होता है, वैश्य राजा का और शूद्र सबका सेवक होता है विशेष कर ब्राह्मण का ॥५५॥ क्षत्रिय की शरण जाने से क्षत्रियों का महान् अयश होता है किन्तु गुरु, देवता और ब्राह्मणों की शरण जाने से उसे महान् यश की प्राप्ति होती है ॥५६॥ हे राजेन्द्र! देवों से भी श्रेष्ठ ब्राह्मण होते हैं अतः उनकी सेवा करो, क्योंकि ब्राह्मण के प्रसन्न होने पर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥५७॥ इस प्रकार उस महासती ने राजेन्द्र को सब बातें बता कर उन्हें अपने अंक से लगा लिया और उनका मुख देख कर बार-बार विलाप-रोदन करने लगी ॥५८॥ उसने पुनः कहा—हे महाराज! क्षण मात्र ठहरो, स्नान करो, मैं तुम्हें मनचाहा भोजन कराऊँगी ॥५९॥ हे सुन्दर! चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कर्पूर और कुंकुम युक्त अनुलेप (उबटन) तुम्हारे सर्वांग में लगाऊँगी ॥६०॥ हे प्रभो! क्षण मात्र सिंहासन पर बैठ कर क्षणमात्र मेरे वक्षःस्थल पर बैठो, सभा में पुष्पशय्या पर मैं तुम्हें देखना चाहती हूँ ॥६१॥ क्योंकि हे नृप! पतिव्रताओं के लिए पति उसके सैकड़ों पुत्रों से प्रेम में अधिक होता है, इसे वेद में भगवान् ने स्वयं बताया है ॥६२॥ मनोरमा की बातें सुनकर उस महान् पण्डित राजा ने रानी को समझाया और पुनः प्रत्युत्तर रूप में कहा ॥६३॥

कार्तवीर्यार्जुन बोले—हे कान्ते! मैंने तुम्हारी सभी बातें सुन लीं। शोकाकुल की बातें सभा में प्रशस्त नहीं मानी जाती हैं ॥६४॥ हे सुन्दरि! सुख, दुःख, भय, शोक, कलह (झगड़ा) और प्रीति ये सब कर्मभोग के उचित समय पर

---

१ क. रतितल्पे च पश्यामि जन्म शो०।

कालो ददाति राजत्वं कालो मृत्युं पुनर्भवम्। कालः सृजति संसारं कालः संहरते पुनः॥६६॥
करोति पालनं कालः कालरूपी जनार्दनः। कालस्य कालः श्रीकृष्णो विधातुर्विधिरेव च॥६७॥
संहर्तुर्वाऽपि संहर्ता पातुः पाता च कर्मकृत्। स कर्मणां कर्मरूपी ददाति तपसां फलम्॥६८॥
कः केन हन्यते जन्तुः कर्मणा वै विना सति। स्रष्टा सृजति सृष्टिं च संहर्ता संहरेत्पुनः॥६९॥
पाता पाति च भूतानि यस्याऽऽज्ञां परिपालयेत्। यस्याऽऽज्ञया वाति वातः संततं भयविह्वलः॥७०॥
शश्वत्संचरते मृत्युः सूर्यस्तपति संततम्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः कालो भ्रमति भीतवत्॥७१॥
तिष्ठन्ति स्थावराः सर्वे चरन्ति सततं चराः। वृक्षाश्च पुष्पिताः काले फलिताः पल्लवान्विताः॥७२॥
शुष्यन्ति कालतः काले वर्धन्ते च तदाज्ञया। आविर्भूता तिरोभूता सृष्टिरेव यदाज्ञया॥
तस्याऽऽज्ञया भवेत्सर्वं न किंचित्स्वेच्छया नृणाम् ॥७३॥
नारायणांशो भगवाञ्जामदग्न्यो महाबलः। त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यति महीमिति॥७४॥
प्रतिज्ञा विफला तस्य न भवेत्तु कदाचन। निश्चितं तस्य वध्योऽहमिति जानामि सुव्रते॥७५॥
ज्ञात्वा सर्वं भविष्यं च शरणं यामि तत्कथम्। प्रतिष्ठितानां चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥७६॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रः समरं गन्तुमुद्यतः। वाद्यं च वादयामास कारयामास मङ्गलम्॥७७॥
शतकोटिनृपाणां च राजेन्द्राणां त्रिलक्षकम्। अक्षौहिणीनां शतकं महाबलपराक्रमम्॥७८॥

क्योंकि काल ही राजत्व प्रदान करता है, काल ही मृत्यु और पुनर्जन्म प्रदान करता है, काल संसार का सर्जन करता है और उसका पुनः संहार भी करता है॥६६॥ काल ही पालन करता है, जनार्दन काल रूपी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण काल के काल, विधाता के विधाता, संहर्त्ता के संहर्त्ता, पालक के पालक तथा कर्म करने वाले हैं। वही कर्मों के कर्म रूपी होकर तप के फल प्रदान करते हैं। हे सति! अतः बिना कर्म के कौन किसे मार सकता है॥६७-६८½॥ जिसकी आज्ञा से स्रष्टा सृष्टि का सर्जन करता है, संहर्त्ता संहार करता है, और पालक जीवों की रक्षा करता है॥६९½॥ जिसकी आज्ञा से वायु भयभीत होकर निरन्तर बहता रहता है, मृत्यु का निरन्तर संचार होता है, और सूर्य सदैव तपते हैं॥७०½॥ इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि जलाता है, भीत होकर काल भ्रमण करता है। सभी स्थावर गण स्थित रहते हैं और चर लोग निरन्तर चलते हैं॥७१½॥ कालानुसार वृक्ष फूल-फल और पल्लव से युक्त होते हैं, कालानुसार सूख जाते हैं और उसकी आज्ञा से समय पर बढ़ते हैं॥७२½॥ उसी की आज्ञा से सृष्टि प्रकट और अन्तर्हित होती रहती है, उसी की आज्ञा से मनुष्यों का सभी कुछ होता है, स्वेच्छा से कुछ भी नहीं होता॥७३॥ भगवान् परशुराम नारायणांश और महाबली हैं, इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करेंगे, यह प्रतिज्ञा उनकी कभी विफल नहीं हो सकती है। अतः हे सुव्रते! मेरा वध उन्हीं के द्वारा होगा, यह सुनिश्चित जानता हूँ॥७४-७५॥ सब भविष्य जान कर मैं उनकी शरण कैसे जा सकता हूँ, क्योंकि प्रतिष्ठितों के लिए अयश मरण से भी अधिक दुःख-प्रद होता है॥७६॥ इतना कह कर वह राजेन्द्र समर जाने के लिए तैयार हो गया—वाद्य बजवाने लगा और मंगल कराने लगा॥७७॥ सौ करोड़ राजा, तीन लाख महाराज, महाबली और पराक्रमी सैनिकों की सौ अक्षौहिणी

अश्वानां च गजानां च पदातीनां तथैव च। असंख्यकं रथानां च गृहीत्वा गन्तुमुद्यतः ॥७९॥
बभूव स्तिमिता साध्वी दृष्ट्वा तं गमनोन्मुखम्। धृतवन्तं च सन्नाहमक्षयं सशरं धनुः ॥८०॥
क्रीडागारे क्षणं तस्थौ कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि। पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥८१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

मनोरमा प्राणनाथं क्षणं कृत्वा स्ववक्षसि। भविष्यं मनसा चक्रे यद्यत्स्वामिमुखाच्छ्रुतम् ॥१॥
पुत्रांश्च पुरतः कृत्वा बान्धवांश्च स्वकिंकरान्। सस्मार सा हरिपदं मेने सत्यं भवेन्मुने ॥२॥
योगेन भित्त्वा षट्चक्रं वायुं संस्थाप्य मूर्धनि। ब्रह्मरन्ध्रस्थकमले सहस्रदलसंयुते ॥३॥
स्वान्तमाकृष्य विषयाज्जलबुद्बुदसंनिभात्। संस्थाप्य बध्वा ज्ञानेन लोलं ब्रह्मणि निष्कले ॥४॥
त्रिविधं कर्म संन्यस्य निर्मूलमपुनर्भवम्। तत्र प्राणांश्च तत्याज न च प्राणाधिकं प्रियम् ॥५॥
स राजा तां मृतां दृष्ट्वा विललाप रुरोद च। संनाहं संपरित्यज्य कृत्वा वक्ष्यस्युवाच ताम् ॥६॥

सेना तथा हाथी, घोड़े, पैदल और रथ असंख्य थे, उन्हें लेकर चलना चाहा। इसी बीच सती मनोरमा ने मन्दहास करती हुई उन्हें रोक कर उनके अक्षय कवच और बाण समेत धनुष ले लिया ॥७८-८०॥ उन्हें क्रीड़ागार में ले जाकर क्षणमात्र अपने वक्ष से लगाया और उनका मुखकमल देखती हुई बार-बार चुम्बन करने लगी ॥८१-८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में कार्तवीर्यार्जुन-संनाह नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

अध्याय ३५

नारायण बोले—मनोरमा ने क्षणमात्र अपने प्राणेश्वर को अंग से लगा कर स्वामी के मुख से जो कुछ सुना था, उसका भावी अर्थ मन में निश्चय किया ॥१॥ हे मुने! अनन्तर उसने अपने पुत्रों, बन्धुओं और भृत्यों (नौकरों) को अपने सामने बुलवाया और होनहार को अटल समझ कर भगवच्चरण का स्मरण करने लगी ॥२॥ तथा योग द्वारा षट् चक्र का भेदन कर वायु को मूर्द्धा (ब्रह्माण्ड) में स्थापित किया और जल के बुल्ले के समान विषयों से अपने मन को हटा कर ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्र दल वाले कमल में उसे लगा दिया। उसी स्थान पर निष्कल (निर्गुण) ब्रह्म में उस चंचल मन को ज्ञान द्वारा बाँध कर अविचल कर दिया ॥३-४॥ पुनर्जन्म न हो इसलिए निर्मूल करने के लिए तीनों प्रकार के कर्मों का त्याग किया और प्राण परित्याग भी उसी स्थान में कर दिया किन्तु प्राणाधिक प्रिय का त्याग नहीं किया ॥५॥ उसे मृतक देख राजा विलाप और रोदन करने लगा और कवच त्याग कर उसे गोद में लेकर कहने लगा ॥६॥

राजोवाच

मनोरमे समुत्तिष्ठ न यास्यामि रणाजिरम् । सचेतना मां पश्येति विलपन्तं मुहुर्मुहुः ॥७॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मया सार्धं गृहं व्रज। न करिष्यामि समरं भृगुणा सह भामिनि ॥८॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ श्रीशैलं व्रज सुन्दरि। तत्र क्रीडां करिष्यामि त्वया सार्धं यथा पुरा ॥९॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ व्रज गोदावरीं प्रिये। जलक्रीडां करिष्यामि त्वया सार्धं यथा पुरा ॥१०॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ नन्दनं व्रज सुन्दरि। पुष्पभद्रानदीतीरे विहरिष्यामि निर्जने ॥११॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मलयं व्रज सुन्दरि। त्वया सार्धं रमिष्येऽहं तत्र चन्दनकानने ॥१२॥
शीतेन गन्धयुक्तेन वायुना सुरभीकृते। भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रिते ॥१३॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुकुंमालेपनं कुरु। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पश्य मां सस्मिते सति ॥१४॥
सुधातुल्यं सुमधुरं वचनं रचय प्रिये। कुटिलभ्रूविकारं च कथं न कुरुषेऽधुना ॥१५॥
नृपस्य रोदनं श्रुत्वा वाग्बभूवाशरीरिणी। स्थिरो भव महाराज कुरुषे रोदनं कथम् ॥१६॥
त्वं महाज्ञानिनां श्रेष्ठो दत्तात्रेयप्रसादतः । जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं पश्य शोभनम् ॥१७॥
कमलांशा च सा साध्वी जगाम कमलालयम्। त्वमेव गच्छ वैकुण्ठं रणं कृत्वा रणाजिरे ॥१८॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा जहौ शोकं नराधिपः। ततश्चन्दनकाष्ठेन चितां दिव्यां चकार ह ॥१९॥
संस्काराग्निं कारयित्वा पुत्रद्वारा ददाह ताम्। नानाविधानि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥२०॥

राजा बोले—हे मनोरमे ! उठो, मैं अब रण में नहीं जाऊँगा। चेतना प्राप्त कर मुझे देखो। इस भाँति बार-बार विलाप करने लगा ॥७॥ हे मनोरमे ! उठो। मेरे साथ घर चलो। हे भामिनि ! मैं अब भृगु से युद्ध नहीं करूँगा ॥८॥ हे मनोरमे ! हे सुन्दरि ! उठो, श्री शैल पर चलो और वहाँ पहले की भाँति तुम्हारे साथ क्रीड़ा करूँगा ॥९॥ हे मनोरमे, प्रिये ! उठो, गोदावरी चलो, वहाँ पहले की भाँति तुम्हारे साथ जल-क्रीड़ा करूँगा ॥१०॥ हे मनोरमे, सुन्दरि ! उठो, नन्दन चलें; पुष्पभद्रा नदी के तट पर निर्जन स्थान में तुम्हारे साथ विहार करूँगा ॥११॥ हे मनोरमे, सुन्दरि ! उठो, मलय चलें, वहाँ चन्दन वन में तुम्हारे साथ रमण करूँगा ॥१२॥जो शीतल, सुगन्ध वायु से सुगन्धित, भौंरों की गूँज से युक्त एवं पुरुष कोकिल की मधुर ध्वनि से संयुक्त है ॥१३॥ वहाँ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम का लेपन करके मन्द मुसुकान करती हुई तुम चन्दनचर्चित मेरे सर्वांग को देखो ॥१४॥ हे प्रिये ! अमृत की भाँति अत्यन्त मधुर वचन बोलो। तुम इस समय अपनी भौंहों को टेढ़ी क्यों नहीं कर रही हो ॥१५॥ राजा का रोदन सुन कर वहाँ आकाशवाणी हुई—'हे महाराज ! (चित्त को) स्थिर करो, रोदन क्यों कर रहे हो ॥१६॥ तुम दत्तात्रेय के प्रसाद से महाज्ञानियों में श्रेष्ठ हो, इस सुन्दर संसार को जल के बुलबुले के समान समझो ॥१७॥ वह पतिव्रता कमला (लक्ष्मी) का अंश थी अतः कमला के यहाँ चली गयी और रण में तुम भी युद्ध करके वैकुण्ठ चले जाओ ॥१८॥ इतना सुन कर राजा ने शोक त्याग दिया और रानी के लिए चन्दन काष्ठ की दिव्य चिता बनायी। पुत्र द्वारा उसका दाह संस्कार सुसम्पन्न करा कर ब्राह्मणों को हर्ष से, अनेक भाँति के रत्न प्रदान किये ॥१९-२०॥

नानाविधानि दानानि [1]वस्त्राणि विविधानि च। मनोरमायाः पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥२१॥
भुज्यतां भुज्यतां शश्वद्दीयतां दीयतामिति। शब्दो बभूव सर्वत्र कार्तवीर्याश्रमे मुने ॥२२॥
कोषेषु स्वाधिकारेषु स्थितं यद्यद्धनं तदा। मनोरमायाः पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥२३॥
राजा जगाम समरं हृदयेन विदूयता। सार्धं सैन्यसमूहैश्च वाद्यभाण्डैरसंख्यकैः ॥२४॥
ददर्शामङ्गलं राजा पुरो वर्त्मनि वर्त्मनि। ययौ तथाऽपि समरं नाऽऽजगाम गृहं पुनः ॥२५॥
मुक्तकेशीं छिन्ननासां रुदतीं च दिगम्बराम्। कृष्णवस्त्रपरीधानामपरां विधवामपि ॥२६॥
मुखदुष्टां योनिदुष्टां व्याधियुक्तां च कुट्टिनीम्। पतिपुत्रविहीनां च डाकिनीं पुंश्चलीं तथा ॥२७॥
कुम्भकारं तैलकारं व्याधं सर्पोपजीविनम्। कुचैलमतिरूक्षाङ्गं नग्नं काषायवासिनम् ॥२८॥
वसाविक्रयिणं चैव कन्याविक्रयिणं तथा। चितादग्धं शवं भस्म निर्वाणाङ्गारमेव च ॥२९॥
सर्पक्षतं नरं सर्पं गोधां च शशकं विषम्। श्राद्धपाकं च पिण्डं च मोटकं च तिलांस्तथा ॥३०॥
देवलं वृषवाहं च शूद्रश्राद्धान्नभोजिनम्। शूद्रान्नपाचकं शूद्रयाजकं ग्रामयाजकम् ॥३१॥
कुशपुत्तलिकां चैव शवदाहनकारिणम्। शून्यकुम्भं भग्नकुम्भं तैलं लवणमस्थि च ॥३२॥
कार्पासं कच्छपं चूर्णं कुक्कुरं शब्दकारिणम्। दक्षिणे च सृगालं च कुर्वन्तं भैरवं रवम् ॥३३॥
कपर्दकं च क्षौरं च च्छिन्नकेशं नखं मलम्। कलहं च विलापं च तथा तत्कारिणं जनम् ॥३४॥

मनोरमा के पुण्यार्थ उन्होंने अनेक भाँति के वस्त्र समेत विविध भाँति के दान ब्राह्मणों को सुप्रसन्न मन से प्रदान किये ॥२१॥ हे मुने ! उस समय कार्तवीर्य्यार्जुन के आश्रम में खाओ-खाओ और हमें दो-दो ऐसा निरन्तर शब्द हो रहा था। अपने अधिकार में स्थित कोष में जितना धन था, वह मनोरमा के पुण्यार्थ ब्राह्मणों को उन्होंने दे दिया ॥२२-२३॥ उपरान्त राजा ने संसप्त हृदय से असंख्य सैनिकों और वाद्यों समेत रणस्थल की यात्रा आरम्भ की ॥२४॥ जाते समय मार्गों में सामने उन्होंने अमंगल देखा, किन्तु उसकी उपेक्षा कर के समर के लिए चले ही गये, घर नहीं लोटे ॥२५॥ केश खोले, छिन्न नासिका वाली, रोदन करती हुई, नग्न, काला वस्त्र पहने विधवा स्त्री तथा मुख दुष्ट, योनिदुष्ट, रोगिणी, कुट्टिनी, पतिपुत्रहीना, डाकिनी, पुंश्चली, कुम्हार, तेली, व्याध (बहेलिया), सँपेरा, मलिन वस्त्रधारी, अत्यन्त, रूक्षशरीर, नग्न, गेरुआ वस्त्रधारी, चर्बी का विक्रेता, कन्या-विक्रेता, चिता में जला हुआ शव, राख, कोयला, साँप का काटा-मनुष्य, गोह, शशक (खरगोश), विष, श्राद्ध का पाक, पिण्ड, मोटक, तिल, शूद्र के मन्दिर का पुजारी, वृषवाह (गाड़ीवान हलवाहे आदि), शूद्र के श्राद्ध का अन्न खाने वाला, शूद्र का भण्डारी, शूद्र का यज्ञ कराने वाला, गाँव-गाँव यज्ञ कराने वाला, कुश का पुतला बना कर शव का दाह करने वाला, छूछा घड़ा, फूटा घड़ा, तेल, नमक, हड्डी, कपास, कछुवा, चूर्ण, भूँकता हुआ कुत्ता, दाहिनी ओर भीषण शब्द करता हुआ स्यार, कौड़ी, बाल बनवाना, छिन्न केश, नख, मल, कलह, विलाप तथा विलाप करने वाला मनुष्य, अमंगल बोलने वाला, रोने वाला, शोक करने वाला, झूठी गवाही देने वाला, चोर, मनुष्य-घातक, पुँश्चली स्त्री के

---

१. क. वस्तूनि।